ओ३म्

कर्तव्यवाद

महात्मा जड़ भरत का जीवन चरित्र

पूज्यपाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज पूर्व जन्म के श्रृंगी ऋषि के योग मुद्रा में प्रकाशित प्रवचनों के आधार पर

प्रस्तुतिकरण

लक्ष्मीनारायण जिज्ञासु

बिसौली, (बदायूं)

प्रकाशक

आर्यावर्त प्रकाशन

आर्यावर्त प्रिंटर्स, सौम्या सदन, गोकुल विहार

निकट- श्रीराम पब्लिक इण्टर कालेज, अमरोहा

मुख्य कार्यालय : आर्यावर्त कॉलोनी, निकट मुरादाबादी गेट

अमरोहा (उ0प्र0) 244221, दूरभाष : 05922-263033

कर्तव्यवाद

महात्मा जड़ भरत का जीवन चरित्र

प्रथम संस्करण : वि0 सं0 2072 (सन् 2015)

प्रकाशक आर्यावर्त प्रकाशन

आर्यावर्त कॉलोनी, निकट मुरादाबादी गेट,

अमरोहा-244221 (उ0प्र0) दूरभाष : 05922.262033

कंपोजिंग पं0 चन्द्रपाल 'यात्री'

आवरण इशरत अली

मूल्य एक प्रति- 14/-

मुद्रक आर्यावर्त प्रिन्टर्स, सौम्या सदन, गोकुल विहार,

निकट श्रीराम पब्लिक इण्टर कॉलेज, अमरोहा

दूरभाष : 05922 . 262033, 09412139333

प्राप्ति स्थल आर्यावर्त प्रकाशन

आर्यावर्त कॉलोनी, निकट मुरादाबादी गेट,

अमरोहा-244221 (उ0प्र0)

05922.262033

लक्ष्मीनारायण जिज्ञासु

बदायूं रोड, बिसौली

जिला- बदायूं (उ0प्र0)

प्रकाशकीय

पूज्यपाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी आधुनिक युग की एक ऐसी महान विभूति हैं, जिन्होंने वेदों के सार्वभौमिक दर्शन, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उत्कृष्ट व गौरवशाली इतिहास सहित रामायण व महाभारतकालीन परिदृश्य का वास्तविक स्वरूप अपने योगमुद्रा में प्रकाशित प्रवचनों के माध्यम से जनमानस के समक्ष रखकर महती उपकार किया है। आपके प्रवचनों से आध्यात्मिक विज्ञान, यज्ञ-कर्मकाण्ड, योग सहित समाज, राष्ट्र व विश्व के विभिन्न पहलुओ का बहुत ही विशद वर्णन प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक 'महात्मा जड़भरत' के जीवन चरित्र पर

'कर्तव्यवाद' शीर्षक से प्रस्तुत की जा रही है। आशा है इससे जिज्ञासु पाठकगण बहुत अधिक लाभान्वित होंगे।

श्री लक्ष्मीनारायण जिज्ञासु पूज्यपाद ब्र0 कृष्णदत्त जी के अनन्य भक्त हैं तथा निरंतर स्वाध्याय, सेवा और साधना में तत्पर रहते हैं। आप अपनी रचनाशीलता तथा कर्तव्य निष्ठा से आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द के वैदिक चिन्तन के प्रचार-प्रसार और प्राच्य भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के उन्नयन के प्रति समर्पित रहते हैं। हम उनके दीर्घ आयुष्य व सुस्वास्थ्य की मंगल कामना करते हैं।

आर्यावर्त प्रकाशन का शुभारम्भ समसामयिक चेतना, प्राच्य सभ्यता एवं संस्कृति, वैदिक आर्ष परम्पराधारित, राष्ट्र व समाज के कल्याणार्थ उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशन के उद्देश्य से किया गया है। आर्यावर्त प्रकाशन का यह भी संकल्प है कि दुर्लभ साहित्य का पुनर्प्रकाशन किया जाए, तथा मुद्रण, कलेवर, स्वरूप व सामग्री की दृष्टि से समस्त प्रकाशनों को संग्रहणीय बनाते हुए न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध कराया जाये। पुस्तक के द्वितीय संस्करण को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का सम्यक् प्रयास किया गया है। आपके बहुमूल्य सुझावों व समालोचनात्मक प्रतिक्रिया की सदैव प्रतीक्षा रहेगी।

मकर संक्रान्ति
14 जनवरी 2015
डॉ0 अशोक कुमार आर्य
कृते- आर्यावर्त प्रकाशन

सम्पादक- आर्यावर्त केसरी

कर्तव्यवाद

महात्मा जड़भरत का जीवन चरित्र

आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उसे मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महान विज्ञान में रत रहने वाले हैं। जितना भी यह जगत मानवीयत्व में दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वल ब्रह्माण्ड की आभा में परमपिता परमात्मा निहित हो हरे हैं, मानव उसी में रत रहकर जिसके ऊपर परम्परागतों से ही अपने में अनुसन्धान करता रहा है, कि हम परमपिता परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं। प्रत्येक मानव इसी बिडम्बना में नाना प्रकार की आभाओं में रमण करता रहता है और कहीं न कहीं मानव अपनी आभा में नियुक्त होता रहता है कि मैं उस परमपिता परमात्मा की जो महती है उसमें मैं अपने को ले जाऊँ, जैसे मेघ मण्डलों में विद्युत ओझल हो जाती है इसी प्रकार प्रत्येक मानव उस प्रकृति के आवेश में और प्रकृति के गर्भ में यह ओझल हो जाता है और परमपिता परमात्मा की आभा में जाना चाहता है, परन्तु जब वह संसार के नाना रूपों में रत हो जाता है या होता है, तो वह परमपिता परमात्मा के समीप में न जा करके वह प्रकृति के गर्भ में रमण करने लगता है। तो बेटा हमारा वेद मन्त्र यह कहता है हे मानव यदि तू परमपिता परमात्मा को जानना चाहता है और उसी के समीप जाना चाहता है, तो तुझे नाना प्रकार के इस प्रकृति के आवेशों को त्यागना होगा और प्रकृति को वह मानव त्यागता है जो इसको जान लेता है। जो इसकी जडवत प्रवृति है, उस जड़वत प्रवृति को नहीं जानता या नहीं जान पाता वह इस प्रकृति को नहीं त्याग सकता।

इसीलिए हमारे ऋषि मुनि परम्परागतों से ही इसके ऊपर विचार विनिमय करते रहें हैं कि हम प्रकृति के उन आवेशों को त्यागना चाहते हैं जिन आवेशों में मानव अपने को जड़वत बना लेता है। ज्ञान और चेतना के स्थान में वह जड़वत बन जाता है, जडवत को त्यागना है और चेतना को अपने में लाना है। जो चेतना को लाने का प्रयास करता है वह जडवत को त्याग देता है वही तो मानव संसार में महान बनता है, इसीलिए हमारे 1. आचार्यो ने, 2. अनुसन्धान वेत्ताओं ने, 3. राष्ट्रवेत्ताओं ने भी राष्ट्रों को त्यागकर भयंकर वनों में अपनी चेतना में सैदव रत रहे हैं। मुझे आज पुनः से कुछ वाक्य स्मरण आ रहे हैं।

एक समय बेटा महर्षि साकल्य मुनि महाराज परमपिता परमात्मा के हृदय में मगन हो रहे थे अपने में अन्वेषण करते हुए महर्षि साकल्य के समीप एक वाक्य आया कि मैं तपस्वी कैसे बनूँगा ? वह भयंकर वनों में यह विचार कर रहे थे कि हे मन तू तपस्वी कैसे बनेगा ? वह नाना प्रकार की प्रवृत्ति वाला जो मन है उसको अपने में धारण करने के लिए साकल्य मुनि महाराज की एक निष्ठा बनी और तपस्या करने लगें।

हमारे यहाँ तप के नाना पर्यावाची शब्द माने गये हैं। परन्तु वेद का मन्त्र कुछ और कहता है। देखों तप किसे कहते हैं? प्रत्येक मानव तप की विवेचना में जाना चाहता है। बेटा तप वह कहलाता है जिससे मानव की इन्द्रियों का शुद्धीकरण होता हो। सबसे प्रथम मन के शुद्धीकरण के लिए अनुष्ठान करना होता है। प्रत्येक मानव परम्परागतों से नाना प्रकार से अनुष्ठान करता है। कोई-कोई तो वायु का सेवन करने लगता है कोई नाना प्रकार की वनस्पतियों का करता है और कोई अपान बना रहता है तो नाना प्रकार के रूपों में एक मन्त्र में मन को

पवित्र बनाना है, क्योंकि मन को पवित्र बनाने के लिए मानव कहीं वायु का सेवन करता है कहीं सत्यवादी बना रहता है और मुनिवरों कहीं वह मन के शोधन के लिए अलगवारी (समाज से पृथक) बन जाता है। कहीं नौदा में भक्त बन जाता है कहीं पितर भक्ति करने लगता है, कहीं आचार्य अनुष्ठान में लग जाता है, कहीं नाना प्रकार के भाव में रत हो जाता है परन्तु मन्तव्य सबका एक ही है कि मेरा मन पवित्र हो जाय।

तो देखों मेरे पुत्रों मन को पवित्र बनाने के लिए ऋषि मुनियों ने एक मार्ग बड़ा सा एकत्रित किया है तो नाना वेद मन्त्रों में इस प्रकार के वाक्य आये हैं अन्न जो है वह बह्म को ब्रह्म के समीप ले जाता है। तो बेटा यह कैसा वेद का शब्द है इसके ऊपर जब अन्वेषण करते हैं ऋषि मुनि तो विचार आता है कि 'मनाः वाचो व्रतम् ब्रह्म वाचाः' वेद का वाक्य कहता है कि 'अन्न के पवित्र होनें पर मन में पवित्रता आती है। इसीलिए 'अन्न ब्रह्म है'। देखों पत्रों, पुष्पों को लेकर उनका रस बना करके वह सेवन करते रहे हैं। उनको तपा-तपा करके उनका सेवन करना 'अन्नाद ब्रह्मः, मन को पवित्र बनाना और मन को अपने आप में रमण करना ही पवित्रता कहलाती है। यह परमात्मा के समीप जाने की पगडण्डी है तो पगडण्डी क्या है ? कि अन्न को पवित्र बनाना है मन की उत्पत्ति उसी के द्वार से होती है, तो साकल्य मुनि महाराज ने बारह बारह वर्ष के पाँच अनुष्ठान किये और अनुष्ठान करने से उन्होंने याग और याग की प्रतिक्रियाओं में लगे रहने से अग्नि के मुख में कुछ न कुछ आहुति देना है, वह 'अग्निं ब्रह्मः, है। हमारे यहां दो प्रकार की अग्नियों की उपलब्धि हो जाती है। एक अग्नि वह कहलाती है जो वाह्म जगत में प्रदीप्त हो रही है उसका शोधन करना भी अनिवार्य है, एक अग्नि हमारे अन्तकरण (हृदय) में प्रदीप हो रही है उसे भी आहुति देना अनिवार्य है। उसको आहुति वह पत्र पुष्पों का पान कराना है, जिससे मानव का हृदय पवित्रता की वेदी पर मानो रत हो जाये।

महर्षि साकल्य महाराज प्रातःकालीन वह खेचरी मुद्रा से प्राणायाम करते थे उससे उनकी अन्न की पूर्ति हो जाती, मध्यकालीन आता तो वह नाना वृक्षों के पुष्पों को लेकर के अग्नि में तपा करके, रस बना करके पान करते थे। सायंकाल को सूर्य प्राणायाम, सूर्य प्राणायाम में संकल्प प्राणायाम की पुट लगाकरके उस रस को सेवन करते थे जो वायु में परमाणुओं के रूप में बह रहा है। इस प्रकार उन्होंने बारह वर्षो का अनुष्ठान किया इससे उनका मन पवित्र बन गया, इससे उन्होंने मोक्ष की पगडण्डी प्राप्त कर ली। (यौगिक प्रवचन 21 नवम्बर 1985)

मुझे स्मरण आता है बेटा महर्षि साकल्य मुनि के आश्रम में एक अनुसन्धान हो रहा था। वह अनुसन्धान यह हो रहा था कि हमारे इस शरीर में कितने परमाणु, कितने हमारे वंशलजों के परमाणु विद्यमान हैं। महर्षि साकल्य मुनि महाराज के यहाँ महर्षि टोकनिक ऋषि महाराज ने स्वाम्भुक ऋषि महाराज ने बेटा तीनों ने अनुसन्धान करना प्रारम्भ किया अनुसन्धान करते रहे तो देखो वहां श्वेत मुनि महाराज जी जो उस समय अपने काल के बड़े विज्ञानवेत्ता थे, वे श्वेत ऋषि महाराज आश्रम में पधारे उनके यहां नाना प्रकार के यन्त्र भी विद्यमान थे, तो देखो जब चिन्त के मण्डल का अध्ययन करने लगे, तो उसमें अपने चिन्तों का दर्शन करने लगे। तो बेटा अपने बहुत बंशलजो का रक्त, रक्त का बिन्दु, रक्त का परमाणु में चिन्त और चित्रों को यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात करने लगे। मुझे कुछ स्मरण है कि साकल्य मुनि और श्वेत मुनि महाराज का अपने में निर्णय किया हुआ एक सर्वोत्तम था कि मानो उन्होंने लगभग करोड़ो वंशलजों के प्रवाह शरीर में दृष्टिपात करते रहे करोड़ों वंशलज, करोड़ों पिता, करोड़ों महापिता, पडपिता, इन उन पिताओं के रक्त हमारे शरीर में गमन कर रहे थे। इसीलिए बेटा भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिभा भिन्न-2 प्रकार के विचारों में मानव सदैवरत रहा है। वही साकल्य मुनि

महाराज अपने में कितने विचित्र रहे और अध्ययन करते करते उन्हें बड़ा विशेष विवेक हो गया, जब विवेक हो गया तो स्वाति (श्वेत) मुनि महाराज तो विज्ञान की शिक्षा का अपने विद्यालय में अध्ययन कराते थे। मेरे पुत्रों मुझे कुछ स्मरण आ रहा है वही साकल्य मुनि महाराज सतयुग के काल में मानों देखो उनकी प्रतिभा दृष्टिपात आती रही है। उनका साहित्य उनका विचार बड़ा भव्य रहा है। (यौगिक प्रवचन 22 सितम्बर 1988)

उनका जीवन बड़ा अद्वितीय था भयंकर वनों में उनका वास था और उन्हें लगभग दो सौ वर्ष हो गये थे साधना और तपस्या में रत हुए, उनकी साधना बड़ी विचित्र चल रही थी और देखो वह सब द्वारों (नव द्वार) से पार हो गये थे। मोह, ममता इत्यादियों से भी, देखो एक समय वह अपने आसन पर विद्यमान थे और देखो अपने को यह स्वीकार कर रहे थे कि मैं मोक्ष के द्वार पर चला गया हूँ, वह यही चिन्तन कर रहे थे कि मैं प्रभु के राष्ट्र में आ गया हूँ। और प्रभु के राष्ट्र में जाने से ही मानवता महान प्रबलता को प्राप्त होती रहेगी और मेरा जो आत्मीय ज्ञान है वह पवित्रता में परिणत हो जायेगा। वह प्रभु के राष्ट्र में अपने को स्वीकार कर रहे थे तो बेटा तो नाना ऋषिवर आते और ज्ञान-विज्ञान की आभा की चर्चा करते रहते थे।

बेटा! एक समय आत्मा की चर्चा करते हुए महर्षि साकल्य मुनि नाना ब्रह्मचारी और जिज्ञासुओं से यह उच्चरण करने लगे कि यह आत्मा का अनुपम विषय है, यह बड़ा विचित्र है। देखों आत्मा ही प्रकाश में रत रहने वाला है और आत्मा ज्ञान और प्रयत्न के माध्यम से रमण करता है, मानो यह जो आत्मा है इसका मौलिक गुण है वह ज्ञान और प्रयत्न कहलाता है। ज्ञान कहते हैं संसार की मौलिक वस्तुओं का ज्ञान होना, ज्ञान और विज्ञान में रत रहना, ज्ञान उसे कहते हैं देखों प्रभु का दिया हुआ अनुपम ज्ञान है प्रत्येक मानव उस परमपिता परमात्मा का सूत्र बना रहता है और इस सूत्र की माला को अपने में धारण करने लगता है वह ज्ञान में रमण करने लगता है क्योंकि उसी माला का नाम ज्ञान है। जैसे हमारे वेदों में तीन विषय आते हैं ज्ञान, कर्म और उपासना। ज्ञान उसे कहते हैं 'ज्ञानति जन्ननमे ब्रहे, जो प्रत्येक वस्तु का ज्ञान लेता है देखों जैसे हम अग्नि को जानना चाहते हैं तो अग्नि का जो गुण है वह तेजोमयी है और वह अपने तेज से देखो अग्नि के तेज से दोनों की तुलना करने लगता है। तो वह संतुलित हो जाता है तो अग्नि को जानना ही मानों अपनी अग्नि से समावेश करने का नाम ज्ञान है। जैसे सूर्य के ज्ञान से हम जाना चाहते हैं वह सूर्य का प्रकाश है वही उसका ज्ञान है मानो जो उसमें ऊर्जा है वहीं उसका ज्ञान है और वह ऊर्जा क्या क्या क्रिया कलाप करती है यह संसार देखो उसका ज्ञान कहलाता है। तो वह जो ज्ञान है वही 'ज्ञानाति ब्रह्मे कृतम, जो ज्ञान लेता है वहीं ज्ञानी बन जाता है। मेरे पुत्रो देखो वह जब ऊर्जा में गमन करता है कि यह जो ऊर्जा का ज्ञान है कि यह ऊर्जा गमन कर रही है, इसका मूल क्या है ? हम इससे क्या-क्या क्रिया कलाप कर सकते हैं। तो पहले बेटा भौतिक विज्ञान में पहुंचो उसके पश्चात् आध्यात्मिकवाद में रमण कर जाओ, जब भौतिक विज्ञान में यह जान लेता है कि यह जो सूर्य की उर्जा है इसके साथ मेरा यन्त्र गमन कर सकता है। इसी प्रकार जब आध्यात्मिकवाद में वह प्रवेश होता है, तो अध्यात्मिकवाद में योगी सूर्य की किरणों के साथ कुम्भक प्राण को जानकर देखो प्राण का कुम्भक करता हुआ अपान और उदान के द्वारा उसे जानते हुए देखो सूर्य की किरणों के साथ वह सूर्य मण्डल में प्रवेश हो जाता है तो मानों उसे उसका ज्ञान कहते हैं, जो इसको जानता है वह ज्ञान कहलाता है। तो मेरे पुत्रों यह जितना भी संसार है यह चाहे व्यवहार में हो, चाहे वह देखो परोक्ष में हो, चाहें अपरोक्ष में ही जान लेना ही ज्ञान कहलाता है।

प्रत्यन किसे कहते हैं ? प्रयत्न उसे कहा जाता है जो मानव देखो दृष्टिपात करके उसकी गति में

अन्तर्द्वन्द आ जाये अगर गति में जब परिवर्तन हो जाता है तो उसी गति के साथ देखों प्रयत्न बन जाता है, और प्राणों की रक्षा करना ही बहुत अनिवार्य कहलाता है वह उसका प्रयत्न बन जाता है तो देखो प्रयत्न की और भी विचित्र विवेचना करते हुए ऋषि मुनियों ने यह कहा है और वेद का मंत्र यह भी कहता है कि हम मानो प्रयत्न कर रहे हैं। हम संसार में अपने उपार्जन का भी प्रयत्न करते हैं, मानो वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा नाना प्रकार के परमाणुओं का मिलान करते हैं वह भी प्रयत्न कहलाता है देखो मानव जितना भी पुरूषार्थ करता है वह प्रयत्न कहलाता है। प्रयत्न की विवेचना करते हुए ऋषियों ने कहा है कि इस पृथ्वी से नाना प्रकार की ऊर्जा तत्वों को उपार्जन करने का नाम भी देखों प्रयत्न कहा जाता है और वह प्रयत्न ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न होता है। जैसे जब किसी वस्तु का ज्ञान होता है तो उसके पश्चात वह प्रयत्न करता है। जैसे एक मानव सूर्य मण्डल में जाना चाहता है और उसने यह जान लिया है कि तू सूर्य की किरणों के साथ गमन कर सकता है तो उसी समय वह प्रयत्न करता है कि प्राण को अपान में मिलाता है और अपान को समान में और समान को व्यान में प्रवेश करता हुआ उदान में प्रविष्ठ कर जाता है, तो प्राणों की एकसूत्रता बनी तो उसी समय ज्ञान के द्वारा ही वह प्रयत्न करता है कि मैं योगेश्वर बन जाऊँ। मैं प्राण और अपान में जाने लगूँ और सूर्य की किरणों में कौन सा प्राण गमन कर रहा है। उससे वह अपने में प्रयत्नशील हो करके और वह ज्ञान और प्रयत्न दोनों के स्वरूप में रमण करता हुआ वह सूर्य मण्डल की यात्रा करने लगता है, तो विचार आता रहता है कि आत्मा के ही दोनों मौलिक गुण कहलाते है ज्ञान-प्रयत्न।

देखों जब विचार किया जाता है कि जब मानव के परमाणुओं को सुन्न कर दिया जाता है वह प्रयत्न कहां गमन करता है किसके गर्भ में चला जाता है तो विचार आया कि बेटा वह मानो जो आत्मा का प्रयत्न था या है वह उसी के गर्भ में चला गया वह प्राण के माध्यम से ही तो गमन करना चाहता है, वह प्राण की क्रिया सुन्न हो जाती है (अर्थात स्थिर हो जाती है) परन्तु उसका जो मौलिक गुण है वह नष्ट नहीं होता वह उसके गर्भ में चला जाता है क्योंकि जब मानव का साथ नहीं रहता है जिस मानव का जिस यन्त्र में वह क्रिया में लाना चाहता है जब वह नहीं रहता तो उसका जो मौलिक गुण है वह उसी के गर्भ में प्रवेश कर जाता है विचार विनिमय क्या कि मानव को सदैव ज्ञान और प्रयत्न की आभा में रत रहना चाहिए। जब ऋषि साकल्य ने यह वाक्य कहा कि मानव को ज्ञान और प्रयत्न दोनों को एक दूसरे में समावेश करना है और वह समावेश ही मानव को मोक्ष के द्वार पर ले जाता है इस प्रकार की चर्चाएं ऋषिवर जिज्ञासुओं से करते रहते थे और कहा कि मानव को ज्ञान और प्रयत्न को जानना है। इन दोनों को जान करके ही हम अग्रणीय बन सकते हैं उस समय साकल्य मुनि महाराज दो सौ पिचायसी वर्ष हो गये थे। इस प्रकार अध्ययन करते-करते चित्त के मण्डल को भी जान गये थे और मोक्ष के निकट जाना चाहते थे। उसके द्वार पर भी चले गये। एक समय कोई भी जिज्ञासु नहीं था वे जिज्ञासु सब अपनी-अपनी स्थली को चले गये। तब महर्षि साकल्य मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे और चिन्तन कर रहे थे। (अप्रैल 12.04.1990)

वह एक समय एकान्त स्थली पर विद्यमान थे कहीं से विहिन्त नामक एक दैत्य मांस आहार करने के लिए एक हिरणी के पीछे गति करने लगा, वह पूर्णरूपेण गर्भवती थी, तो जैसे उसने अस्त्रों का प्रहार किया तो साकल्य मुनि के आश्रम में हिरणी और 'प्रो' मानो वह गर्भाशय से विहीन हो गई। शावक को जन्मदेकर हिरणी आगे चली गयी जलादि (जेर मुक्त शावक) साकल्य मुनि के आश्रम में रह गया और वह दैत्य भी आगे गति करता रहा तो मुझे ऐसा स्मरण है कि साकल्य मुनि ने उस हिरणी के शावक को दृष्टिपात किया। अरे! इसमें

तो कोई गति हो रही है सांस और प्राण की गतियां हो रही हैं तो साकल्य मुनि ने अपने कमण्डल में से जल लेकर उसके मुखार विन्द में परिणित किया उससे सांसों की गति मध्यम बनी और अपनी स्थलियों पर आ गयी। शावक ने जल का और उपयोग किया तो वह जीवित हो गया। साकल्य मुनि ने उसे कण्ठ से आलिंगन किया और उसकी पालना में लग गये, हिरणी शावक ऋषि आश्रम में पनपने लगा। नाना प्रकार के भोज्य को प्राप्त कराते रहते, समय पर दुग्ध प्रदान कराते। वह वेचुक नामक राज्य के समीप पहुँचे और वेतुकेतु राजा के द्वार पर जाकर उन्होंने कहा 'सम्भव लोकाम्' साकल्य मुनि को जब राजा ने दृष्टिपात किया तो वेतुकेतु राजा ने उनसे कहा कि यहां साकल्य मुनि का आगमन कैसा मैं दृष्टिगत कर रहा हूँ यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य है, उन्होंने राज्य स्थली को त्याग दिया और यह कहा आइए, भगवान पधारिये। वह साकल्य मुनि राज्य स्थली पर विद्यमान हो गये तब राजा ने उनके चरणों का स्पर्श करके कहा कहिए भगवन आपका कैसे आगमन हुआ है ? साकल्य मुनि ने कहा राजन मुझे गौ की इच्छा है, मुझे दुग्ध देने वाली गौ प्रदान कीजिए उन्होंने कहा प्रभु यह तो मुझे आप सूचना दे देते, मैं गौ आपके आश्रम में पहुँचा देता। प्रभु आपने यह कष्ट क्यों किया है ? उन्होंने कहा कि भ्रमण करता हुआ मैं ही आ गया हूँ कोई बात नहीं है। तब राजा ने ऋषि का स्वागत किया और अपने सेवकों से कहा कि दुग्ध देने वाली एक गौ आश्रम में ले जाओ सेवकों ने एक गौ आश्रम में पहुँचा दी और ऋषि ने वहां से गमन किया, राजा ने कहा प्रभु और कुछ देख लीजिए साकल्य मुनि ने कहा राजन! तुम्हारे राष्ट्र में महानता तो होनी चाहिए तुम्हारा राष्ट्र विज्ञान वेत्ता होना चाहिए। राजा को यह उपदेश दे करके वहां से आज्ञा पाकर उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए वह अपने आश्रम में पहुँचे, तो उन्हें गौ प्राप्त हुई उसके दुग्ध को उस हिरणी के बालक को आहार कराते रहते थे। ऋषि को ममता और मोह ऐसी विचित्रता में हुई कि बेटा जिन्होंने अपने शरीर से मोह नहीं किया परन्तु देखो हिरणी के बाल्य से इतना मोह हुआ कि उसको कंठ से आलिंगन उसका चुम्बन करते रहते, उसको पुत्र की भांति उसका पालन करते रहते थे, उस हिरणी के बाल्य को भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा देते रहते थे।

साकल्य मुनि महाराजा श्वेतकेतु महाराज के पुत्र कहलाते थे और श्वेत केतु मुनि महाराज का आयु बड़ा ही दीर्घ था देखो उनकी जो माता थी उनका श्वेधा नाम था। श्वेधा अपनी लोरियों को पान कराते हुए उन्हें यही शिक्षा देती कि हे बाल्य! तू निसंकोच हो, और निर्वस्त्रीय बन जाए परन्तु तू किसी से इच्छा प्रगट मत कर। माता की जो यह शिक्षा रही। श्वेतकेतु यही कहते रहते कि हे ब्रह्मचारी! तू राजा के राष्ट्र में अपने विचार की इच्छा को प्रकट करो, अपने स्वार्थ के लिए मानों स्वार्थपरता में नहीं आना चाहिए। पिता की भी यही शिक्षा आचार्यो की भी यही शिक्षा रही, परन्तु देखो अपने जीवन काल में साकल्य मुनि ने पॉच अनुष्ठान बारह-बारह वर्षो के, परन्तु दो अनुष्ठान उन्होंने याज्ञिक होने के लिए किये। उस समय उनकी आयु दो सौ पिच्चासी वर्ष की थी, उन्होंने किसी से कभी कोई इच्छा प्रकट नहीं की। उनका जीवन कितना त्याग और तपस्या में रहा है।

एक समय साकल्य मुनि महाराज मुनिवरों कत्यांग गृह में भ्रमण करते हुए जा पहुँचे। कत्यांग के एक कन्या थी उस कन्या ने ऋषि से कहा प्रभु मुझे उपदेश दीजिए, उन्होंने कहा कि तुम्हें क्या उपदेश दूँ। कन्या ने कहा नहीं भगवन आप तो बडे तपस्वी हैं, वेदज्ञ हैं, दर्शनों के गर्भ को जानते है। उन्होंने कहा देखों मैंने तो यह पाया है कि अब तक मुझे जो शिक्षा प्राप्त हुई है वह यह हुई है कि किसी से हीनता के वाक्यों को मत उच्चारण करो। तुम कन्या हो, कत्यांग के गृह में तुम्हारा जन्म हुआ है जब मानो अपने कुल का परिवर्तन हो, तो तुम अपने हृदय में यह इच्छा प्रकट मत करो कि मेरी जो माता या पितर है वे मेरे पालन-पोषण के लिये कुछ

प्रदान करें, क्योंकि यह इच्छा करना तुम्हारे लिए मानो तुम्हारी हीनता है। यह मेरे पूज्यपाद पिता जी का माता जी और आचार्यो का उपदेश रहा है कि यदि कन्या की यह इच्छा रहती है कुल परिवर्तन होने पर (पति के गृह में प्रवेश होने पर) कि माता मेरे लिए कुछ पालन-पोषण हेतु दे तो यह उसकी हीनता है जिससे उसका मृत्यु का प्राप्त हो जाना। ऐसा ऋषि साकल्य ने कत्यांग की कन्या को उपदेश दिया। कत्यांग की कन्या ने और स्वांति (पत्नी) ने यह कहा कि हे भगवन यह बहुत प्रियतम वाक्य है, मानो आपका उपदेश मुझे शिरोमणि है क्योंकि वाक्यों से यह इच्छा ही नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मानव को अपने क्रिया कलापों में तपस्या में मानवीयत्व में मानो शरीर रत रहना चाहिए। जब ऋषि ने यह वाक्य प्रकट किया तो कत्यांग की कन्या ने कहा कि धन्य हो प्रभु! उन्होंने फिर कहा प्रभु मुझे कोई और उपदेश दीजिए उन्होंने कहा हे देवी मेरा उपदेश तो केवल यही है कि मानव को वेद का अध्ययन करना चाहिए, वेद प्रकाश में रत रहना चाहिए 'वेदा अमृताम ब्रह्मलोकाम' यह जो वेद है यह अमृत है। यह परमपिता परमात्मा को मानो हमारे यहां एक वेद है परमपिता परमात्मा जो सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है निर्माण वेत्ता है सृष्टि के प्रारम्भ में मानव के ज्ञान और विज्ञान को अपने संस्कारों में उपलब्ध कराने के लिए ज्ञान विज्ञान की धाराओं में रत रहने के लिए वेद का पवित्र ज्ञान हमें दिया है। इस वैदिक ज्ञान को वैदिक प्रकाश के अपना करके हम मानवीयत्व को देखो उर्ध्वा में ले जायें और मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करें।

देखों कत्यांग की पत्नी ने कहा प्रभु आप मेरी कन्या को उपदेश दे रहे हैं, यह तो बड़ा प्रिय है। देखो मोह के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है। मोह होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। कत्यांग की पत्नी से ऋषि ने कहा कि मोह नहीं होना चाहिए। परन्तु कर्तव्य का पालन होना चाहिए, क्योंकि कर्तव्य पनप रहा है परन्तु यह जानती है कि निर्माण करने वाला प्रभु है। यह परमपिता परमात्मा की बड़ी सम्पदा है, इदम् न मम यह मेरी सम्पदा नहीं है। मेरे गर्भ से उत्पन्न होने बालक मानो प्रभु की आज्ञा का पालन और उसके नियमों का पालन करने वाला हो, तो यह मेरा जीवन सार्थक बन जायेगा, मानो जब माता के हृदय में ये विचार रहते हैं, तो माता मानो अपने बाल्य को जन्म दे करके अपने में अति प्रसन्न है कि मेरे बाल्य पूर्ण आयु होगा। क्योंकि माता यह जानती है कि यदि मेरे विचार में निष्ठा रहेगी तो मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक भी पूर्ण आयु को प्राप्त होगा तो माता-पिता का उसका शोक भी नहीं होगा, शोक उस काल में होता है प्राणी को। जब प्राणी का प्राणी से मिलन होकर विच्छेद हो जाता है। हमारे यहां देखो मुनिवरों माता पिता से पूर्व बालक का विच्छेद नहीं होता है। क्योंकि माता कर्तव्य का पालन कर रही है और मृत्यु को जान लेती है। अपने बाल्य को माता कहती है कि हे बालक। यह जो संसार है, जिस संसार में हम और तुम विद्यमान हैं। 'यह संसार निस्सार है, इसमें कोई सार नहीं है। यह तो केवल बिडम्बना का क्षेत्र है तो माता कहती है कि हे बालक तुझे इस संसार से उपरामता को प्राप्त होना। इस संसार को अपने उपांगों से जानना ही हमारा कर्तव्य है।

हे बालक तुम मुझे जानो मैं तुझे जानूँ संसार में, देखो मृत्यु का अभाव हो जाता है। माता जब अपने बाल्य को शिक्षा बाल्यकाल में संस्कारों को उपलब्ध करा देती है तो देखो मातम् बह्मा, वह कहती है बालक तेरा अज्ञान होना ही मृत्यु है, शोकाकुल होना ही मृत्यु है, हे बालक संसार में निराशा ही मृत्यु है जब माता देखो बालकों यह गौरव के वाक्य प्रकट करती है तो माता कर्तव्य का पालन कर रही और जो कर्तव्य का पालन कर रही है कर्तव्य का जो उपदेश है माता का वह महान और पवित्र बन जाता है।

मुनिवरो देखो कत्यांग के गृह में जब साकल्य मुनि महाराज ने यह उपदेश दिया तो कत्यांग की पत्नी

चरणों को स्पर्श करके बोली धन्य है। प्रभु! परन्तु एक और प्रश्न है कि जब बाल्य महान बन जाये और गृहस्वामीवादी बन जाये और वह गृहस्वामी वादी बन जाए, तो माता पिता को क्या करना चाहिए? मेरे प्यारे देखो उस समय ऋषि ने कहा कि माता पिता को मानो प्रभु की गोद में चला जाना चाहिए, वे ब्रह्मयाग में रत हो जाये अर्थात ब्रह्मयागी बन जाए ब्रह्मयगी वह प्राणी होते हैं जो ब्रह्म का चिन्तन करते है और बह्म ज्ञान जो प्रकृति के गर्भ में जो ब्रह्म की आभा निहित हो रही है, उस आभा में जब माता पिता रत हो जाते हैं जो उसके गृह में बाल्य बालिका हैं वे माता पिताओं के उस ब्रह्म ज्ञान का अनुसरण करते हैं, तो गृह में स्वर्ग की स्थापना हो हाती है, वायु मण्डल दूषित नहीं होता है। जब गृहस्वामी और गृहस्वामिनी का वह बाल्य हो जाता है। उस समय माता पिता उसकी आभा में उसके क्रिया कलाप में जब बाधक बन जाते हैं तो उस समय गृह में सतवादी विचार न रह करके कलह में गृह हो जाते हैं और वह गृह नारकिक बन करके विचार वायु मण्डल में प्रवेश हो जाते हैं तो वायु मण्डल भी दूषित हो जाता है। तो देखो मेरे प्यारे बाह्य और आन्तरिक अब दोनों दूषित हो गये तो उस समय देखो शोधन के लिए कोई क्रिया कलाप नहीं रहता है और वह परमाणु अन्तरिक्ष से उसी को प्राप्त हो करके और भी कलह का क्षेत्र बनकर नाना प्रकार के और अप्रिय भक्ष्य पदार्थो में रत हो करके अपने को नष्ट करने वाले बन जाते हैं तो विचार विनिमय क्या मैं विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ विचार यह देने के लिए आया हूँ महर्षि साकल्य मुनि महाराजा कात्यांग के गृह में यह वाक्य उच्चारण करने लगे, देखो कात्यांग की पत्नी ने कहा प्रभु मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आपके शरीर से आपके हृदय से ऐसी सुगन्ध आ रही है जैसे आप ममता में परिणित हो जायेगे। तब साकल्य मुनि ने कहा देवी तुम्हारा वाक्य मिथ्या तो होता नहीं है। मैंने कई काल में कई ऋषियों से यह वाक्य श्रवण किया है क्या तुम्हारा वाक्य यथार्थ है, तुम जीवन में सत्य उच्चारण करने वाली हो मिथ्या उच्चारण नहीं करती तो जब इसकी आभा तुम्हारे में है तो मैं भी मोह में परिणित हो सकता हूँ। कोई ऐसा आश्चर्य नहीं है मेरे प्यारे देखो उन्होंने कहा कि प्रभु आप अपने को ममता से दूर कीजिए ऋषि ने कहा देवी मैं प्रयास तो करूँगा परन्तु देखो यह कैसे होगा उसको प्रभु ही जानता है मैं नहीं जान पाता। आपने भविष्य की मुझे चर्चाएं घोषणा की हैं मेरे शरीर में चित्त के मण्डल में ऐसे अंकुर विद्यमान हो सकते हैं।

साकल्य मुनि महाराज ने एक रात्रि वहां विश्राम किया और वहां से उन्होंने गमन किया, गमन करते हुए जब वह अपने आश्रम में आये तो हिरणी का बालक व्याकुल हो रहा था, वह जल का पान भी नहीं कर रहा था उनसे उसका मोह हो गया था ऋषि को अपने पिता तुल्य स्वीकार करके मोह से दुःखी था तब ऋषि ने आ करके उसे अपने कण्ठ से आलिंगन किया। रात्रि का समय हुआ तो कात्यांग की पत्नी के द्वारा कहे हुए वाक्य को विचारने लगे और उन्होंने कहा यह तो बड़ा विचित्र वाक्य है हो सकता है मुझे तो आज हिरणी के बालक को दृष्टिपात करके मेरा अन्तःकरण यह कहता है कि तुझे मोह हो गया है, तुझे ममता हो गयी है, मेरे बिना यह हिरणी का बाल्य नहीं रह पाता और मेरा अन्तः हृदय ही मानो उसकी निन्दनीय दशा को दृष्टिपात करके मैं भी व्याकुल हो गया हूँ। इस प्रकार वे चिन्तन में लग गये और चिन्तन करते रहे देखो प्रातःकालीन हिरणी के बाल्य को पुनः से हृदय से आलिंगन किया और उसको गौ के घृत और दूध के द्वारा उसका पालन करने लगे तो मुझे ऐसा स्मरण हे कि मुनिवरों देखों पूर्ण रूपेण जब उसका पालन करने लगे तो एक समय भ्रमण करते हुए कहीं से उनके पिता श्वेतकेतु और माता भी आ गये। श्वेतकेतु को दृष्टिपात करके महर्षि साकल्य मुनि महाराज ने उनके चरणों को स्पर्श किया और उन्हें आसन दिया उस पर माता पिता विद्यमान हो गये तो वे

हिरणी के बाल्य को दुग्ध पान कराने लगे, माता-पिता का स्वागत इतना ही किया और हिरणी के बाल्य को दुग्धार कराते रहे, परन्तु माता-पितरों को दुग्धारहार नहीं कराया। जलपान नहीं कराया, मानो कन्दमूल नहीं दिया, हिरणी के बाल्य की ममता में साकल्य के रत रहने को देखकर उनके माता-पिता श्वेतकेतु ऋषि के अश्रुपात होने लगे और अपनी पत्नि से श्वेतकेतु महाराज बोले कि हे देवी हम वृद्धों का यहां से प्रस्थान होना चाहिए, पत्नि ने कहा प्रभु महर्षि साकल्य को मानो पुत्र स्वीकार नहीं करोगें उन्हों किस दृष्टि से दृष्टिपात करोगे उन्होंने कहा देवी मैं तो दृष्टिपात ऋषि के आभा से ही कर रहा हूँ परन्तु देखो मेरा अन्तः आत्मा दुखित हो रहा है, उन्होंने कहा -क्यों ? श्वेतकेतु ने कहा देवी हमने तुमने इसके बाल्यकाल में इसके बनाने में जो सहयोग दिया है वह सहयोग आज हमें व्यर्थ प्रतीत हो रहा है, मेरे पुत्रों इससे उनकी पत्नि ने कहा भगवन ऐसा क्यों ? उन्होंने कहा हमे भी मोह हो गया है, मोह होने के कारण हम आये हैं हमारा अन्तः हृदय कह रहा है कि यह भी मोह ममता में परिणित हो गया है तो साकल्य मुनि ने पिता को देखकर कहा कि हे भगवन! ऋषिवर! आपके अश्रुपात क्यों हो रहे हैं। आप क्यों व्याकुल हो रहे हो। पिता श्वेतुकेतु ने कहा कि हे पुत्र क्या मैं तुम्हें मोह में दृष्टिपात कर रहा हूँ। साकल्य मुनि ने पिता से कहा कि प्रभु आप मुझे तो मोह में दृष्टिपात कर रहें हैं। मैं आपको भी मोह में दृष्टिपात कर रहा हूँ। अब पिता देखों मौन हो गये। माता ने कहा, कहो भगवन ऋषिवर साकल्य मुनि क्या कह रहे हैं ? उन्होंने कहा यथार्थ कह रहे हैं, मुझे ममता में ही साकल्य मुनि कहते हैं। क्या मोह की सन्तान तो मोह में ही नष्ट हो जाती है भगवन! तो मेरे प्यारे स्वयं को दृष्टिपात करते हुए उन्होंने कहा यथार्थ है, तो वेद का ऋषि कहता है (मन्त्र कहता है) माता-पिता को कर्तव्य का पालन करना चाहिए, मोह से न पालन करना चाहिए और न मोह में सम्पदा (सम्पत्ति) एकत्रित करना चाहिए। यह मोह ममता में संसार नष्ट हो जाता है। साकल्य मुनि ने अपने पिता से यह कहा कि हे पितर तुम मोह में आते हो शोकातुर हो, तुम्हें मेरा मोह है कि मैंने इन्हें सहयोग दिया है। माता नहीं कह रही है, माता मोक्ष की पगडण्डी को अपने में रत हो रही है और आप शोकातुर हो करके अपने जीवन को नार्किक बना रहे हो। नवीन संस्कारों की उपलब्धियों को जन्म दे रहे हो। साकल्य ने जब यह कहा कि मुझे मोह है, और होना है, क्योंकि मेरा मोह से जन्म हुआ है और मोह में ही मेरा शरीर पूर्ण हो जायेगा। जब साकल्य मुनि की माँ श्वेधा ने कहा पुत्र तुम्हारा जीवन महान बने। यह आशीर्वाद दे करके माता और पिता ने वहां से गमन किया।

जब रात्रि काल आया तो साकल्य मुनि चिन्तन करने लगे कि मेरी माता कितनी महान है मानो यह जानती हुई भी मुझे कहती है कि तुम अपने में आयुष्मान बन करके जीवन को व्यतीत करो, साकल्य मुनि इसी चिन्तन में लगे रहे ब्रह्म ज्ञान में ब्रह्म की आभा में भी और हिरणी के बाल्य से मोह ममता में परिणित रहे। तो देखो मोह की आभा में मानव को विशेष नहीं जाना चाहिए। वेद के वाक्य और ऋषि मुनियों ने यह कहा कि मानव को कर्तव्यवाद का पालन करना चाहिए। माता पालना करती है यदि वह कर्तव्यवाद में रत हो जाय तो कर्तव्यवाद ही मानव को ऊँचा बनाता है, कर्तव्यवाद ही राष्ट्र को ऊंचा बनाता है, कर्तव्यवाद में ही संसार में सूर्य प्रातःकाल उदय होता है वह किसी से स्वार्थ नहीं चाहता प्रकाश देता रहता है, नाना प्रकार की किरणें देता रहता है वह प्रत्येक प्राणी को प्रकाश देता है उनको भोज्य प्रदान करता है, चन्द्रमा मानो रात्रि काल में अमृत को बहाता रहता है, रात्रि काल में ही प्राणेश्वर अपने में ध्वनित होता रहता है और प्रत्येक प्राणी उस काल में विश्राम करने लगता है। (21 नवम्बर 1985)

उस हिरणी के बाल्य से ऋषि को मोह हो गया जो मोक्ष् के द्वार चले गये थे और जिस ममता को ऋषि

त्याग गये थे वह ममता पुनः से जो आत्मा के मानव स्वरूप में गमन कर रही थी मन के और प्रकृति के मण्डल में वह पुनः जागरूक हो उठी। और वह जब जागरूक हो गयी तो हिरणी के बाल्य से वह मोह ममता में रत हो गये। जब मोह ममता में रत हो गये तो इतनी ममता जागरूक हो गयी कि वह प्रथम भोज्य उसे पान कराते उसके पश्चात स्वयं भोज्य करते। जब ममता की बेला में ऋषिवर प्रवेश कर गये तो कुछ समय के पश्चात उस हिरणी के बाल्य की आयु प्रबल हो गयी। 24 वर्ष का वह हिरणी का बाल्य हो गया था। देखो वृद्धपन उसको आना ही था, वृद्धपन आने पर उसका प्राणान्त हो गया तो ऋषि के अन्तः हृदय में दुःख हुआ और वह ममता इतनी जागरूक हो गयी कि उन्होंने हिरणी के बाल्य के द्वितीय कोई दृष्टिपात नहीं आ रहा था उसकी दाह में वह रत रहते थे।

मेरे प्यारे जब उनके माता-पिता को उनके सहपाठियों और ऋषियों मुनियों को यह ज्ञान हुआ कि महर्षि तो ममता में रत हो गये तो एक समय भ्रमण करते हुए सोमकेतु उनके आश्रम पर पहुँचे, क्योंकि उन्होंने वहां विद्याध्ययन की थी। उन्होंने कहा भगवन इस मोह में क्यों आ गये हो। साकल्य ने कहा मैं मोह ममता में रत हो गया हूँ और देखो यह जान नहीं पा रहा हूँ। सोमकेतु ने कहा प्रभु ममता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यह ममता तो मानव के अन्तःकरण को विनाश करने वाली है। आप किस आभा में चले गये, आपको कर्तव्य की पालना करनी थी, और आत्मा के ज्ञान की प्रतिभा उन्हें स्मरण कराने लगे, और वे यह बोले कि आत्मा का तो यह लक्षण ही नहीं है। आत्मा का तो केवल लक्षण ज्ञान और प्रयत्न है। आप प्रयत्न कर रहे थे कि मैं इस संसार से उपराम हो जाऊ, यह भी तो एक प्रयत्न है जो आप कर रहे थे और यह आत्मा का मौलिक गुण है। जिसको तुमने जान लिया है। जिसने संसार में एक-एक परमाणु बाद को जान लिया है फिर भी उसमें इतनी ममता मे रत हो गये हो। आपने प्रकृति के मण्डल को जाना है यह जो प्रकृति का मण्डल है यह जड़ है परन्तु यह परमात्मा के सान्निध्य मात्र से नाना प्रकार की रचना में दृष्टिपात आता रहता है। जैसे मानव को स्वप्न आता है और यह स्वप्न क्या है ? देखो यह मन आत्मा के प्रकाश में जो रमण करता है वही तो स्वप्न को प्राप्त होता है। इसी प्रकार तुम आत्मा के प्रकाश में ही तो ममता में परिणित हो गये हो। तुम आत्मा के मौलिक प्रकाश को जानने का प्रयास करो, जो ज्ञान और प्रयत्न के माध्यम से रमण करने वाला है। एक मानव ने यह दृष्टिपात किया कि यह जो वायुमण्डल में सूर्य जो गमन कर रहा है या चन्द्रमा गमन कर रहा है, और चन्द्रमा शीतल है। तो यह सब उसने अपनी अनुभूति से जान लिया परन्तु जब यह प्रयत्न करता है तो चन्द्रमा के स्वरूप को जानने के लिए तत्पर हो जाता है। वह आत्मा का मौलिक गुण है परन्तु प्रकृति के तथ्यों का जानना भी तो प्रयत्न है और देखों उसमे प्रयत्न करना जहां से हम आये है, जहां हमें जाना है हमें जाना कहां हैं, कहीं जाना है लेकिन आना जाना है यही तो देखों हमारा ज्ञान प्रयत्न कहलाता है। सोमकेतु मुनि महाराज ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो साकल्य मुनि के मन में यह विचार नहीं आ पा रहा था। उन्होंने कहा (ऋषि साकल्य ने कहा) प्रभु वाक तो आपका यथार्थ है, परन्तु जो मेरे संस्कार पुनः से ममता के जागरूक हो गये हैं, वह कैसे नष्ट होगें क्योंकि यह मेरा जीवन व्यर्थ बन गया है। इस प्रकार महर्षि सोमकेतु ने बहुत सी वार्ता प्रकट की।

एक समय कहीं से भ्रमण करते हुए वहां वैशम्पायन ऋषि भी पहुँच गये उन्होंने कहा, कहो साकल्य हमने तो आपका नाम यह श्रवण किया हे कि तुम मोक्ष के द्वार पर पहुँच गये हो। इस संसार को जानते-जानते तुम कहां चले गये हो, कि तुमने ममता को जाना, तुमने क्रोध अग्नि को जाना, तुमने ही मोह की प्रवृत्ति को जाना है और जानते-जानते तुम कहां आ गये हो ? किस क्षेत्र में प्रवेश कर गये हो ? साकल्य मुनि ने कहा प्रभु! यह

मेरा दुर्भाग्य है। मैं दुर्भागी हूँ, जानता हुआ भी अग्नि में प्रवेश हो गया हूँ। भगवन! हे प्रभु यह भी भयंकर अग्नि है जिसने इतनी ममता में मुझे परिणित कर दिया हे। मानो भगवन जब मैं माता की लोरियों का पान किया करता था, तो माता मुझे यह कहती थी कि हे बाल्य तुझे मोह नही करना चाहिए, मैं भी कर्तव्य का पालन कर रही हूँ, मैं मोह में परिणित होना नहीं चाहूँगी, क्योंकि माता को कर्तव्यबाद में रहना चाहिए, और देखों मोह से अपने को उपराम हो जाना चाहिए, इस संसार से उदासीन हो जाना चाहिए। एक समय जब मैं प्रबल हो गया था तो उन्होंने मुझे प्राण की विद्या प्रदान करायी और मैं साधना में परिणित रहता। एक समय मैंने कुम्भक प्राणायाम ऐसा किया जिससे दूसरों को यह दृष्टिपात आने लगा कि मैं मृतक हो गया हूँ। मैंने अपनी माता की परीक्षा ली, कि माता इसमें क्या कहेगीं ? कुम्भक और रेचक प्राणायाम दोनों का मिलन करते हुए प्राण और अपान का समन्वय करते हुए मैं समाधिस्थ हो गया। और ऐसा दृष्टिपात होने लगा जन समूह को जैसे कि इसकी मृत्यु हो गयी है। जब माता से यह कहा कि हे माता! तेरा युवा बाल्य मानो मृत्यु को प्राप्त हो गया है, और विद्या को अध्ययन करके यह आये थे विद्यालय से, उस समय माता ने जब यह श्रवण किया तो माता ने यह कहा इसमें रूदन न करो यह व्याकुल होने का विषय नहीं है यह तो मानो इसका ''योगाचरण ब्रह्म'' मानव के जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार हैं और उन संस्कारों के आधार पर ही मानव अपने भोगतव्यों क्रियाओं में रत रहता है। इसी प्रकार यह बाल्य भी अपने भोगाचरणों में रत हो रहा है परन्तु माता यह जानती थी कि यह मृतक नहीं हुआ, यह मानो तेरी परीक्षा ले रहा है। क्योंकि मैंने कहा है कि मैं ममता में नहीं जाना चाहती थी तो जब ऐसा उन्होंने पान किया तो माता ने कहा कि हे बाल्य तू मेरी परीक्षा ले रहा है। तो प्रभु माता मानो इस प्रकार की तरंगों को जानने वाली थी जब मानव के शरीर से तरंगों का प्रादुर्भाव हो जाता है, तो सब अच्छी प्रकार जान लेता है। इसका नाम ही तो ज्ञान कहलाता है बेटा ज्ञान की महिमा बड़ी विचित्र मानी गयी है। एक-एक तरंग हमें ज्ञानी बनाती है। एक-एक तरंग की सुगन्धित हमें वहीं तरंगों में तरंगित हो वह हमें महापुरूष बना देती है। देखो साकल्य मुनि ने कहा कि माता ने भी निर्णय कराया और यह उसी की देन थी, जो मैं यहां तक चला आया परन्तु मेरे कौन से जन्मों के संस्कार चित्त में ऐसे उदबुद्ध हो गये,ख् जो हिरणी के बाल्य से मोह हो गया, तो महर्षि वैशम्पायन ने कहा इसको त्यागो। साकल्य ने कहा ऋषिवर अब यह नहीं त्यागी जाती, क्योंकि अन्तःकरण में जो संस्कार अंकित हो गये हैं। इनमें मुझे पुनः से उसी दशा में जाना होगा, जिस दशा में मेरी माता ने मुझे पवित्र ज्ञान (शिक्षा) देकर के निर्मोही बना दिया था। मैं मानो पुनः से मोही बन गया हूँ और वह संस्कार पुनः से मेरे अन्तःकरण में जागरूक हो गये हैं, जब महर्षि साकल्य मुनि महाराज ने ऐसा कहा कि पिता जी यही शिक्षा देते रहते थे, क्योंकि मेरे पितर अमृत रहते हैं। उनकी चार सौ पिचायसी वर्ष की आयु हो गयी है और वे मेरे समीप आते रहे हैं। और वे मुझे शिक्षा देते रहे हैं। हे प्रभु मैं उस शिक्षा को स्वीकार तो कर रहा हूँ परन्तु मेरे अन्तःकरण में जो संस्कार अंकित हो रहे हैं और जब मुझे वे स्मरण आते है, तो मैं उसी क्षेत्र में चला जाता हूँ। मोह एक ऐसा विचित्र नृत्य है, जो मानव के अन्तःकरण में हो जाता है, जिस माता के अन्तःकरण में अंकित हो जाता है, वह बाल्य की पालना में इतनी मोहित हो जाती है कि वह अपने से दूर नहीं कर पाती है। विचार आता रहता है कि महर्षि साकल्य मुनि महाराजा का यह निश्चय विचार बन गया कि 'मोहम् ब्रह्मे, देखो यह एक वृत्त है। कर्तव्यवाद से दूरी होने पर मानव की प्रतिभा नष्ट हो जाती है। इसीलिए मेरी प्रतिभा नष्ट हो गयी है भगवान महर्षि वैशम्पायन में अपने विचार दे करके वहां से गमन किया।

देखो कुछ समय के पश्चात यह चिन्तन होता रहा और इसी ममता के रूप में उन्होंने एक समय अपने

शरीर को त्याग दिया, आत्मा अपने उन्हीं मोह के संस्कारों को लेकर चित्त मण्डल में प्रवेश कर गये। शरीर को त्यागने के पश्चात वह शव रह गया। देखो ऋषि मुनियों ने अमृता को जान करके साकल्य मुनि महाराज का इस शरीर से विच्छेदन हो गया है, उस शव को अग्नि में दाहकर दिया, अग्नि में दाह करने के पश्चात ऋषि मुनि उस भूमि पर विद्यमान होकर विचारने लगे कि ऋषि का उद्धार कैसे होगा, कैसे कल्याण होगा ? ऋषि मोक्ष के निकट चला गया था। परन्तु पुनः से संसार में आ गया और देखों ऐसे अन्धकार में आ गये, जो मोक्ष से भी नीचे की स्थली पर प्रवेश हो गया, ऋषि मुनि यह विचार विनिमय करते रहे, कि एक बिषीसग नाम के ब्रह्मचारी ने कहा कि भगवन! मेरे विचार में तो यह आता है। मैं उनके चरणों की जब वन्दना करने आता तो वह अपने को यही कहा करते थे कि मैं मोक्ष को तो चला जाऊंगा, परन्तु देरी लगेगी। देखो मुझे एक जन्म या दो जन्म लेने और होगें। क्योंकि मेरे अन्तःकरण में देखो मेरे कर्मो का संस्कार बन गया है। तो मेरें प्यारे देखो इसी प्रकार हमें ऐसे विचारों में जाना हैं जहां हमारे जीवन में मोह इतना प्रबल न हो जाये। इसी का नाम उग्र क्रिया कहलाता है देखो उग्र क्रिया जीवन में नहीं होनी चाहिए। वेद का मंत्र कहता है कि हे मानव यदि तू अपने जीवन को महान बनाना चाहता है तो तेरे में उग्र क्रिया नहीं आना चाहिए। यदि तेरे में उग्र क्रिया आती है, तो तेरे जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। यदि मोह से अपने अन्तःकरण में संस्कारों का जन्म न होने दो यदि अन्तःकरण में संस्कार बनेगें तो आवागमन का क्षेत्र बन जायेगा। ऋषि कहता है कि क्रोधाग्नि नहीं आनी चाहिए। इससे देखो नाग प्राण उदबुद्ध हो करके हमारे शरीर का विष बना देता है। उसी से हमारे शरीर में रोगों की उत्पत्ति हो जाती है और रूग्ण हो करके हम जीवन में मृत्यु को प्राप्त होते रहेंगें। ऋषि ने कहा कि देखों यह जो मानव का जीवन है इसमें शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं कहलाता। मृत्यु उसके कहते हैं जो अशुद्ध संस्कारों को जन्म देता रहता है और अन्तःकरण में वह जन्म देने वाले संस्कार अंकित होते रहते हैं वह जन्म जन्मान्तरों में हमें भोगना होता है। मेरे प्यारे देखो क्रोधाग्नि के सम्बन्ध में मोह के सम्बन्ध में बहुत से विचार हैं। बेटा इन विचारों के लिए ऋषि मुनियों ने प्राणायाम किया है, प्राण और अपान को मिलाने का प्रयास किया है। देखों प्रभु के राष्ट्र को विचारों और अपने को इसमें ले गये हैं तो इसीलिए विचार आता रहता है कि हम क्रोधाग्नि में उग्र क्रिया में परिणित न हो जायें।

हमारे यहां पॉच प्रकार की उग्र क्रिया होती है 1. काम, 2. क्रोध, 3. मद, 4. लोभ और 5. मोह यह मानो पञ्चीकरण कहलाता है जो मानव को उग्र क्रिया में ले जाता है। ये पांचों की उग्र क्रिया कहलाती है। जब तक यह सीमा में है वही मानव का संसार है और इनका सीमा से आहर आना ही मानो संसार में दुर्गुणों दुरिता को प्राप्त होना है तो जैसे अमृता ब्रते देवत्वाम, जैसे मानव को जब लोभ आता है तो लोभ इतना प्रबल हो जाता है और इतना प्रबल हो जाय कि दूसरे के द्रव्यों की ग्रहण करने की उग्र क्रिया उसमें आ जाये तो वही जानो कि उसकी आत्मा की तरंगों का विनाश होने जा रहा है और वह एक समय मानो अपने में अपनेपन को न जान करके वह संसार के नाटकीय क्षेत्र में प्रवेश हो जाता है। तो विचार आता रहता है कि ये पॉच प्रकार की उग्र क्रिया है। इसी अति का उग्रता नाम है और सामन्यता का नाम ही यह संसार कहलाता है। इसमें आनन्दवत को मानव प्राप्त होता है। तो यह कि मानव को उग्र क्रिया में प्रवेश नहीं करना चाहिए विचार कहता है कि उग्रता लानी है तो तपस्या में उग्रता लाओ। जिससे तुम प्रभु के राष्ट्र में प्रवेश कर जाओं।

अरे उग्रता लानी है तो यहां काम, क्रोध, मोह, लोभ और मद को त्यागने की उग्रता को लाने का प्रयास करो और उसमें प्रयत्नशील बन जाओ और वही प्रयत्न तुम्हे प्रभु के राष्ट्र में पहुँचा देगा। जहां अन्धकार नहीं

रहता। जहां प्रकाश ही प्रकाश रहता है। आत्मा प्रकाश में रत हो करके और प्रकृति से अपना विच्छेद कर लेती है और चेतना से अपना मिलान करके प्रभु को प्राप्त हो जाती है। हे मानव तू अपनी उग्र क्रिया को त्याग दे, क्योंकि उग्र क्रिया तेरे विनाश का मूल है। (12 अप्रैल 1990)

कुछ समय के पश्चात सतोयुग में एक मानकृतिक नाम के राजा थे मानकृतिक के यहां उनकी पत्नी शकुन्तला के गर्भ में उस साकल्य मुनि की आत्मा का प्रवेश हो गया। आत्मा के प्रवेश होने पर उसको अपना जीवन तो स्मरण था और जब माता के गर्भ को दृष्टिपता किया, जहां देखो वह अग्नि की दाह है प्राणों की गर्जना है, और मां नाना प्रकार के तीखे पदार्थ को ग्रहण कर रही है, वहीं रूधिर में मानो स्नान हो रहा है, देखो आपो (जल) प्रविष्ट हो रहा है, और मैं मानो उस माता के गर्भ में प्रवेश कर गया हूं। मैं यह चाहता था, कि मेरे अन्तरात्मा की यह भावना थी कि मैं मोक्ष के निकट चला जाऊँ, परमात्मा के क्षेत्र में चला जाऊ, परमात्मा के गर्भ में प्रवेश कर जाऊँ। अरे देखो परमात्मा के गर्भ में तो मैं जा नहीं पाया, परन्तु माता के गर्भ में पुनः से आ गया हूँ। इस प्रकार ऋषि अपने में प्रार्थना कर रहा है, और यह कह रहा है कि हे प्रभु जहां भिन्न-भिन्न प्रकार की दाह मुझे सहन करनी हो रही है, हे प्रभु यह अत्यन्त असहनीय है। हे प्रभु इस संसार से उसी संसार में ले चल, प्रभु मैं आगे जाऊंगा संसार में, इस क्षेत्र में मोह नहीं करूँगा, प्रभु मुझे यहां से पृथक कीजिए। मेरी माता को मोह हो जाय जिसके गर्भ से मैं प्रथक होऊँगा। परन्तु मैं प्रतिज्ञा बद्ध हूँ आपके क्षेत्र में। यह सब आपका क्षेत्र हे परन्तु इसमें आ करके मैं मोह नहीं करूंगा। मैं मोह से उपराम हो जाऊंगा यह मेरा संकल्प बन गया है। वह बाल्य गर्भ अवस्था में परमात्मा से प्रार्थना कर रहा है। यह आत्मा अपने में मानो परमात्मा का उपासक बन करके वह तपस्या में परिणित हो रहा है। वह नौ माह नौ दिवस पूर्ण हुए तो माता के गर्भ में वह बाल्य पृथक हो गया। जब पृथक हो गया तो देखो माता की लोरियों को पान करने लगा। परन्तु जब राजा को प्रतीत हुआ कि आज तुम्हारे गृह में बाल्य का जन्म हुआ है तो बेटा कहीं वेदों का उदगीत गाया जा रहा है, कहीं याग हो रहे हैं, कहीं दर्शनों की वार्ता हो रही है तो भिन्न-भिन्न प्रकार के चयन राजा के राष्ट्र में हो रहे हैं। मानो सर्वत्र राष्ट्र में आनन्द छा रहा है। उस समय राजा बड़ा हर्षित उनकी देवी बड़ी हर्षित हैं।

जब बाल्य प्रबल होने लगा तो वह ममता तो उसे स्मरण थी, वे पूर्व के क्रियाकलाप उसे स्मरण थे तो देखो उसे न तो माता से ममता है न पितरों से है और मानो उस गृह और राष्ट्र से उसे ममता नहीं है। देखो राजा ने यह कहा कि यह बाल्य ऐस प्रतीत होता है देवी कि जैसे यह निर्बुद्धि हो, न उसमें क्रिया है, न यह मगन होता है। जो भी क्रिया है वह नाना वृक्ष, नाना पौधो को नष्ट, कहीं पुष्पों को नष्ट कर रहा है। उन्होंने कहा यह आपके समीप है, राजा के राष्ट्र मे जब उस बालक ने ऐसा क्रिया कलाप किया तो उन्होंने मस्तिष्क विशेषज्ञों के द्वार पर, वैद्यराजों के द्वार पर उसको प्रवेश कराया। उसको कोई दोषारोपण नहीं था, कोई रोग नहीं था, विशेषज्ञों ने कहा राजन इस ब्रह्मचारी को कोई रूग्ण नहीं है। इसका हृदय, मस्तिष्क और क्रिया कलाप सर्वत्र बड़ी उर्ध्वा में है। जब वह वापिस आया तो राजा ने वाटिका में मन्द सुगन्ध वायु इसके मस्तिष्क को नवीन बनायेगी उसे स्थित कर दिया तो वह राजा की वाटिका को नष्ट करने लगा। जब वह वाटिका को नष्ट करने लगा तो वाटिका के विशेषज्ञ और कर्मवेत्ता थे, वे राजा के समीप आये और राजा से कहा कि हे प्रभु! यह तो आपका ब्रह्मचारी पुत्र है इसके पामरो वाले कर्म हैं। उसने सब वाटिका नष्ट कर दी है, जब राजा वाटिका में उनके समीप पहुँचे तो दृष्टिपात किया कि वास्तव में ऐसा ही था। राजा ने यह कहा कि ब्रह्मचारी जड़भरत जाओ तुम मेरे राष्ट्र से दूर हो जाओं, मेरे राष्ट्र की सीमा में तुम्हें नहीं रहना है। देखो उस ब्रह्मचारी ने

वाटिका को त्याग दिया और गमन करके वह भयंकर वनों में चले गये, राजा अब अपने में विचारने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिए? तेरे यहां ऐसी सन्तान का जन्म होना बड़ा अपश्राप है। राजा इन विचारों में मग्न होते और शोकाकुल होते हुए शान्त हो जाते। उस बालक से न तो राजा को मोह रहा, न देवी को मोह रहा, और न उस बाल्य को मोह रहा, न नगरी वालों को मोहा रहा, जब निर्मोही हो गया तो भयंकर वनों में जाकर तप करने लगे देखो आत्मवेत्ता तो आत्मा में लीन रहते हैं, आत्म-चिन्तन करते रहते हैं, पुष्पपत्र पान कर लेना और पान करने के पश्चात आत्म में लीन रहना उनका कर्म था, आत्म चिन्तन कर रहा है, वह संसार की गणना में नहीं जी रहा है, यह बिडम्बना वृत्तियों को नष्ट कर रहा है, जिसका देखो संसार नहीं होता है तो वह अध्यात्मवेत्ता कहलाता है, आत्मचिन्तन करते हुए उनका भयंकर वन में निवास है।

हमारे यहां मनु वंश में अयोध्या में जो राज्य करते थे उनका नाम नहुष था। वह अपने दूसरे पन की वृत्तियों में सम्पन्नता को प्राप्त हो गये, उन्होंने अपना ब्रह्मचार्य काल तो विद्यालय में व्यतीत किया अैर गृहाश्रम मानो राष्ट्रीय प्रणाली को नियुक्त करने में, उसे सुसज्जित बनाने में रहे वे राष्ट्र का पालन करने लगे, जब राजकीय कार्यो से उपराम हुए तो उनका वह दूसरापन भी समाप्त हो गया, और तीसरेपन में प्रवेश हो गये। वे तीसरेपन में जब आये तो उनको विचार आया कि मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को राष्ट्र देकर भयंकर वन में किसी महान आत्मा को अपना आचार्य स्वीकार करके मैं उनसे कुछ परमात्मा के चिन्तन में विचार-विनिमय करके प्रवेश हो जाऊँ। महाराज नहुष अपने यहां एक सभा की ओर सभा करने के पश्चात उसमें राजा महाराजा सभी एकत्रित हुए उसमें महाराज शिव और पार्वती और भी राजा उस सभा में पहुँचे, उस सभा में महाराजा नहुष ने कहा कि मेरा जो ज्येष्ठ पुत्र है इसका नाम सुकुस्तु राजा है, यह सुकुस्तु राजा राज्य का पालन करेंगे और मुझे विवेक हो रहा है। मैं भयंकर वन को जा रहा हूँ वहाँ जा करके प्रभु का चिन्तन करूँगा और अपने क्रियाकलापों से मैं मोक्ष की पगडण्डी ग्रहण करना चाहता हूँ। सब राजाओं ने यह कहा यह तो बहुत ही प्रियतम है, परन्तु महाराज शिव ने कहा हे राजन! नहुष! य तो तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारे हृदय में ऐसी प्रवृति का जन्म हुआ, क्योंकि हमारी जो राष्ट्रीय परम्परा है, हमारी जो मानवीय परम्परा है, वह सृष्टिकाल से वेदानुसार ऐसी ही रही है। तुमने ब्रह्मचर्य रूपी गारपथ्य नाम की जो अग्नि है उसे पूर्ण कर लिया है, गृहपथ्य नाम की अग्नि में तुम पारायण हो गये हो, अब तुम अपने प्रभु के आंगन में प्रवेश करना चाहते हो तो यह तो हम सबका बड़ा सौभाग्य है उनके राष्ट्रवेत्ताओं ने और राष्ट्र में रहने वाली प्रजा ने कहा बड़े धन्य हो आप और धन्य करते उनके वचनों को स्वीकार करते सब मौन हो गये। राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को महाराज शिव की अध्यक्षता में राज्याभिषेक कराया।

राज्याभिषेक होने के पश्चात अपनी पालिका में विद्यमान हो करकके चार सेवकों के द्वारा राजा नहुष ने अपने राज्य को त्याग दिया। राष्ट्र को त्यागने के पश्चात वह भयंकर वनों में जा पहुँचे, तो पालिका का एक कहार रूग्ण हो गया। जब रूग्ण हे गया तो उन्होंने विचार कि राजा को कैसे ले जायें। सेवक जब एक मानव को खोजने के लिए भयंकर वन में गमनक करने लगे तो कहीं जड़ भरत अपनी शान्त मुद्रा में आत्म में लीन हुआ वह महापुरूष शान्त विद्यमान है, उन्हें वे कहार वहां से ले आये और लाकरके, उस पालकी की ऑगन में जहाँ एक के रूग्ण होने से कार्य नहीं हो रहा था, जड़ भरत को उसके स्थान में लगा दिया। जब पालिका को लेकर गमन करने लगे तो वे जड़ भरत जानते नहीं थे, तो पालकी कहीं धूर्वा में कहीं उर्ध्वा में गमन करने लगी, तो देखो पालकी के धूर्वा और उर्ध्वा होने से राजा नहुष दुखित हुए और क्रोधग्नि जाग्रत हो गयी और

राजा ने कहारों से कहा कि मेरी पालकी को स्थिर करो। जब पालकी स्थिर हो गयी, तो राजा नहुष ने पालकी से नीचे उतर कर डण्डे से महाराजा भरत को दण्डित करना प्रारम्भ किया। जब वे दण्डित करते रहे, करने के पश्चात जब थकित हो गये तो महाराजा नहुष अपने आसन पर विद्यमान हो गये और महाराज भरत वेद मन्त्रों के उदगति गाने लगे। हे प्रभु! हे देवों के देव महादेव! हे विष्णु! तू पालनकर्ता है। हे परमात्माः तुम न्यायकर्ता हो, आप न्यायकोरी हैं, है भगवन! मैंने तो पूर्व के जन्म में हिरणी के बाल्य का मोह किया था, हे भगवन! मैं मोह के कारण कहाँ से कहाँ चला गया। हे प्रभु! संसार के रचियता। जब मुझे मोह आया तो सबसे प्रथम पिता ने धिक्कारा, ऋषि-मुनियों ने मुझे बहुत धिक्कारा, परन्तु मेरा मोह ज्यों का त्यों बना रहा और मोह के वशीभूत हो करके मैंने शरीर त्याग दिया। हे प्रभु! उस मोह के कारण माता के गर्भ में आया और वहां नाना प्रकार के कष्टों को सहन किया। प्रभु मैने आपसे गर्भ से पृथक होने की प्रार्थना की प्रभु माता के गर्भ से पृथक हो गया तो राजा के यहां जन्म हुआ किन्तु राजा ने मुझे राष्ट्र से दूर कर दिया और मुझसे कहा कि तुझे मेरे राष्ट्र में नहीं रहना है। प्रभु मैं भयंकर वनों में चला आया, यहाँ ऐसे-ऐसे राजाओं ने मुझे दण्डित किया है। हे प्रभु। मैने तो मोह ही किया था तो मुझे इतना दण्डित किया है, परन्तु हे प्रभु! तेरे राष्ट्र में जो मोह भी किया करते हैं, क्रोध भी करते हैं, काम की वृत्तियों में भी रत रहते हैं, अहंकार से निम्न कोटि के कार्य करते हुए भी नहीं लजाते। हे प्रभु! जब ये तेरे द्वार पर जायेंगें, तेरे न्यायालय में तो प्रभु आप कैसा न्याय करोगे ? हे प्रभु आप किस प्रकार उनकी कर्म की गतियों के न्याय में परिणित हो जाओगे ? मोह के कारण ही जब मैं इस प्रकार संसार से दुखित हो गया हूँ। हे प्रभु जो क्रोधी हैं और कामी भी रहे हैं शासनकर्ता भी हैं, उनकी क्या गति होगी ? ऐसे प्राणियों का क्या बनेगा ? ऋषि यह प्रार्थना कर रहा है। इन सब वार्ताओं को सुनकर नहुष ने कहा आप कौन है ? उन्होंने कहा मेरा नाम भरत है नहुष ने कहा आप वही जडभरत है जिसका नाम सर्वत्र भूमण्डल में हा रहा है। आप तो धन्य हैं प्रभु मैं तो आपको अपना स्वामी बनाने के लिए अपना गुरू बनाने के लिए आत्मवेत्ता के लिए मैं प्रार्थना कर रहा था। हे प्रभु मुझे क्षमा करो और मुझे आप अपनी शरण में ले लीजिए। आप मुझे ज्ञान विज्ञान की प्रतिभा वर्णन कराए। हे प्रभु मेरा उद्धार जभी हो सकेगा, और मैंने यह महापाप किया है जो आपको दण्डित किया अपनी स्वार्थपरता के कारण। हे प्रभु आप ब्रह्म हैं मुझे क्षमा कीजिए। महात्मा भरत बोले हे राजन! आपका इसमें कोई दोषारोपण नहीं है यह तो मेरे भोगों की पराकाष्ठा है, जो मैंने कर्म किया है वह तो भोगना ही है। मेरे अन्तःकरण में नाना जन्म जन्मान्तरों के जो संस्कार उदबुद्ध हो रहे हैं। नाना संस्कारों को लेकरके जो मैं गमन कर रहा हूँ। मानो वे तो मेरे समीप आने ही हैं। उन्होंने ने कहा राजन आप अध्यात्मिकवेत्ता है, किसी आचार्य और महापुरूष की यदि आपको पिपास बनी हुई है तो जाइए किसी को आचार्य बनाइए, और उनके चरणों की वन्दना कीजिए। हे राजन मैं इस योग्य नहीं हूँ।

देखो राजा नहुष ने कहा हे प्रभु! आप ही तो मेरे सहयोगी है क्योंकि मैंने तो संकल्प बद्ध होकर अपने राज्य को त्यागा है और मैं आपकी शरण में आया हूँ, प्रभु मुझे आप अपने से दूर न कीजिए, हे प्रभु यह प्रकृति परमात्मा से दूरी नहीं होती है यह नाना प्रकार की आभा में रत रहती है जिस प्रकार माता का पुत्र माता से दूरी नहीं होता है। जब तक वह जीता रहता है वह इस संसार में रहता है इसका नामोकरण बना रहता है और प्रणालियां भी इसी प्रकार बनी रहती हैं। हे प्रभु! आप मुझे क्षमा कीजिए। उन्होंने (महात्मा भरत) ने कहा राजन कोई बात नहीं, यह तो कोई वाक्य नहीं है यह तो जब आपके मन की इच्छा पूर्ण नहीं हुई तो क्रोध स्वतः आना है। क्योंकि क्रोध आता ही तब है जब मन की इच्छा पूरी नहीं होती है। जब तक मन की इच्छा पूरी होती रहती

है मानव बड़ा प्रसन्न रहता है। एक माता है पिता अपने पुत्र से उस काल में क्रुद्ध होता है जब पुत्र आज्ञाकारी नहीं होता है। यदि पिता यह स्वीकार कर ले, कि अपने संस्कारों की आभा में यह पुत्र गमन रहा है और मैं अपने संस्कारों की आभा में परिधि में गमन कर रहा हूँ, तो उस समय क्रोध नहीं आ सकता। परन्तु क्रोध आता उस काल में है, जब वह यह चाहता है कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हो रही है, इच्छा पूरी न होने से से ही क्रोधाग्नि जागरूक हो जाती है और वह अग्नि ही संसार में मोक्ष के निकट से भी इस संसार में लाने के लिए तत्पर हो जाती है। जड भरत ने कहा राजन! यह तो आपका स्वभाव बना हुआ है, कि आपकी पालिका मन के अनुकुल नहीं चल पायी तो आपको क्रोध तो स्वभाविक आना था। हे प्रभु! आपको क्रोध आया, आप जो अब तक करते रहे राज्य कार्य में कि दण्ड देना, वह दण्ड देना आपका स्वाभाविक गुण भी मैं नहीं कह सकता। इसको यह कह सकता हूँ कि आपको एक अभ्यास हो गया है। उस अभ्यास के कारण आपको क्रोध आना था क्योंकि मन की इच्छा पूरी न होने से ही क्रोध की आभा जागरूक हो जाती है और वही क्रोधाग्नि मानव को नारकिक क्षेत्र में ले जाती है।

महाराजा भरत ने कहा मैं कौन हूँ क्षमा करो स्वीकार करने वाला, क्योंकि परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और वह अनन्तवान है, मानो मैं उसकी प्रार्थना करता रता हूँ और इसके पूर्व ले काल में मेरा जीवन मोक्ष के निकट चला गया था और मैं मोह के कारण यहा आ गया हूँ। प्रभु आप मेरे योग्य नहीं हैं और मैं आपके सुयोग्य नहीं हूँँ। क्योंकि आप तो राज्य को त्याग करके आये है किसी राज्यऋषि के द्वारा जाओ ओर राज्य ऋषि से जा करके यह प्रश्न करो कि मैं आत्मवेत्ता बनना चाहता हूँ। हे प्रभु मेरे मे यह क्षमता नहीं है, क्योंकि मैं तो अपनी अन्तरात्मा को निहारता रहता हूँ और मेरे हृदय की यह पिपासा बनी हुई है कि अब मैं वहीं मोक्ष के द्वार पर चला जाऊँ जहाँ से मैं इस संसार में आ गया हूँ। मेरी अभिलाषा यही बनी रहती है प्रभु! क्योंकि प्रभु का ज्ञान विज्ञान है वह अनन्तमयी माना गया है यहां प्रभु के राष्ट्र में नाना प्रकार के विचार होते है, कोई मानो अध्यात्मिक वेत्ता आत्मा के ऊपर विश्लेषण कर रहा है, कोई देखो राष्ट्र के ऊपर विशलेषण कर रहा है, कोई पृथ्वी के विज्ञान में रत रहना चाहता है। कोई शब्द विज्ञान को जानना चाहता है, मानो कोई अपने क्रियात्मक जीवन बना करके प्रभु के समीप जाना चाहता है। तो हे राजन! आप तो किसी और महापुरूष को लीजिए जो तुम्हारी पिपासा को शान्त कर सके, क्योंकि मैं तो स्वतः पिपासी बन गया हूँ, तो मैं तो पिपासी हूँ। और जो तुम्हारी पिपासी को शान्त कर दे, वहाँ चले जाओं। हे प्रभु देखों नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान में रत रहने वाले ही महापुरूष कहलाते हैं। हे राजन अम्ब्रहेकृत तुम वहां चले जाओ जहाँ अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ने वाले ऋषि मुनि होते हो। जहाँ मानो अग्नि की धारा और उर्जा पर विद्यमान होकर द्यौ को प्राप्त कर लेते हैं तुम उस स्थली में गमन कर जाओ।

मेरे प्यारे देखो महात्मा जडभरत ने कहा कि मैं तो जड़ हूँ। और रत मानो मुझे समाज कहने लगा है। मैं तो जडवत हूँ और जड के द्वारा मानो चेतना का वाहन नहीं बन पायेगा। प्रभु मैं तो जडवत हूँ और मैं जडवत ही बनना चाहता हूँ। मैं संसार की दृष्टि में ज्ञान और विज्ञान वेत्ता नहीं बनना चाहता हूँ। मेरे प्यारे देखो महाराज नहुष बोले कि हे प्रभु मैंने ज्ञान और विज्ञान की बहुत उड़ान उड़ी है। क्यों कि मैं अपने यहां राष्ट्रवेत्ता भी रहा हूँ। और राष्ट्रवेत्ता के यहां नाना प्रकार का विज्ञान होता है और उस विज्ञान में मानो मैं भी रमण कर रहा हूँ। विज्ञान हमारे यहां नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला है। विज्ञान मानो एक-एक शब्द के ऊपर यह सर्वत्र सृष्टि का चक्र चल रहा है। इस प्रकार का विज्ञान हमारे यहां है। हे प्रभु! उस विज्ञान को त्यागते हुए मुझे तो अपने

अध्यात्मिकवाद और उस प्रकाश में ले जाइए, जिस प्रकाश के लिए आप भी जिज्ञासु या पिपासु बने हुए हैं और वह पिपासा है हे भगवन मेरी भी पिपास शान्त कीजिए।

देखो महाराजा नहुष के यह शब्द श्रवण करते हुए महात्मा जड भरत ने कहा हे राजन मैं इस योग्य नही हूँ, मानो मैं तो अपने प्रभु में ही रत रहना चाहता हूँ। मैं संसार में शिक्षा नहीं दे सकता, मैं संसार को नहीं जानना चाहता हूँ। मैं संसार को अपने अन्तःकरण में समेटना चाहता हूँ, मैं इसको विस्तृत करना नहीं चाहता हूँ।

देखो महाराज नहुष ने कहा हे प्रभु आपका जो ज्ञान विज्ञान है वह भी मुझे नहीं चाहिए। भगवन मुझे तो अध्यात्मिक जो गतियां हो रही है, जिससे आत्मा के समीप चला जाऊँ। मैं आत्मा के ही ज्ञान विज्ञान में रत रहना चाहता हूँ क्योंकि आत्मा प्रकाशक है, आत्मा के न रहने से ही यह शरीर शून्य गति को प्राप्त हो जाता है। हे प्रभु मुझे वह शून्यता भी नहीं चाहिए। प्रभु मैं यह चाहता हूँ कि मेरी चेतना सदैव बनी रहे, उस चेतना को ही मैं जानना चाहता हूँ। मेरे प्यारे देखो उस समय महात्मा भरत ने कहा हे राजन जब आत्मा स्वतः चेतना है और वह तुम्हारे अन्तःकरण में विद्यमान है फिर चेतना का तुम भान क्यों करते हो ? तुम चेतना में क्यों रहना चाहते हो, क्योंकि स्वतः तुम चेतना हो। उन्होंने कहा प्रभु वह जो आवरण चिन्त पर आ गया है उसी आवरण को मैं नष्ट करना चाहता हूँ। जैसे आपका आवरण नष्ट हो गया है। मेरे मानो जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों और मेरे राष्ट्र के क्रिया कलापों से मेरे अन्तःकरण में नाना प्रकार का आवरण आ गया है। उस आवरण को नष्ट करना चाहता हूँ। जिससे स्पष्टीकरण होके मानो मेरा हृदय प्रकाश में चला जाय, मैं ऐसा चाहता हूँ। महात्मा भरत ने कहा हे राजन देखो वह आवरण तो तुम्हारी वृत्तियों के कारण है और वह आवरण जब तुम परमात्मा के राष्ट्र में चिन्तन करोगे और इस संसार में प्रकृतिवाद में परिणित नहीं होंगे तो मानो तुम्हारे अन्तःकरण को जो प्रकाश है, जो तुम्हारी मानवीयता है वह तुम्हारे में स्पष्टीकरणता को धारण कर लेगी। देखो उन्होनें कहा यह मैं जानता हूँ कि आपने मुझे निर्णय कराया परन्तु मेरी अन्तरात्मा यह कहती है कि आप मुझे भगवन ऐसा वृत्त उत्पन्न कीजिए जिससे मेरा वृत्त महान बनकरके आपके चरणों की वन्दना करता रहे, और मैं इस संसार सागर को पार होने के लिए प्रयास करता रहूँ।

देखो वह जडभरत बोले हे राजन! तुम आत्मा का चिन्तन करो आत्मा में लीन हो जाओ। जो मानो घटना जीवन में होती है वह तो प्राय हो ही जाती है। परन्तु देखो अब तुम अपने मार्ग का परिवर्तन करो। जब जड भरत ने आश्वासन दिया और पंकित लगाकर के विद्यमान होकर के दोनों मानो एक दूसरे में ज्ञान भरण करने लगे, उन्होंने बेटा! कहा कि हे नहुष तुम जानते हो कि जब संसार में यह आत्मा का ज्ञान है यही तो वह ज्ञान है जिसमें प्रभु वास कर रहे हैं। मानो देखों मैं उसी के चिन्तन में लगा हुआ हूँ। अपने में इन्द्रियों के विषम को मैं नहीं जानता। ज्ञानेन्द्रियों के विषय को नहीं जान रहा हूँ। मैं यह जानता हूँ कि मेरा लक्ष्य है कि मेरी आत्मा प्रभु में लीन जो जाय। मेरी अन्तरात्मा प्रभु में समर्पित हो जाय। प्रभु मेरी ऐसी इच्छा है ऐसा मेरा लक्ष्य बना हुआ है।

यह लक्ष्य मेरा मानो देखो सात जन्मों के तप से चला आ रहा है। देखो इससे पूर्व जन्म में तो हिरणी के बाल्य से मोह होकर के भगवन इस दशा में जडभरत हुआ हूँ, उससे पूर्व मेरा जनमवृती नाम के ऋषि से वर्णित हुआ उस समय मुझे एक बेटी पर क्रोध आ गया था। वह कामा-कामा कहती मुझे क्रोध आया उसी क्रोध के कारण मैं मोक्ष से मानो देखो द्वितीय स्थान पर आ गया। हे राजन! मानो उससे पूर्व मेरा जन्म मानप्रीतिक

के रूप में था। मानप्रीतिक के रूप एक समय 185 वर्ष तक मैंने चिन्त के मराडल को जाना और देखो प्राणों को एकाग्र किया मैं लोकों की यात्रा करता रहा परन्तु एक समय देखो मैं जब मार्कराडेय ऋषि आश्रम में परिणित हो गया था तो मार्कराडेय ऋषि ने मानो देखो मुझे कुछ आश्वासन दिया और मार्कराडेय ऋषि से मानो मुझे मोह हो गया। उस मोह के कारण मेरी तपस्या का फल समाप्त हो गया। हे प्रभु मैं मानो एक समय पर्वतों की कन्दराओं में मृती राजा भ्रमण कर रहे थें देखा उनसे मैं क्रोधित होकर के मेरा तप समाप्त हो गया तो प्रभु मैं सात जन्मों से इस चक्र में लगा हुआ हूँ। अब मैं चाहता हूँ मानो तुमने मुझे दण्डित किया तो मुझे क्रोध नहीं आया तो मेरी इच्छा यह बन गयी है कि अब मैं तो प्रभु के द्वार पर चलाजाऊ।

यह कहकर महात्मा जडभरत मौन हो गये और राजा नहुष भी वहीं विद्यमान हो गये। मुझे ऐसा स्मरण है कि बारह वर्ष हो गये महात्मा नहुष भी विद्यमान हैं और जडभरत ने भी, मौन धारण कर लिया तो वे कोई वार्ता एक दूसरे से प्रकट नहीं कर रहे हैं। वे दोनों ही प्रभु की सृष्टि को निहारने लगे। महात्मा जड भरत जब हृदय में उदगीश गाने लगे कि प्रभु मैं अपनी इस स्थली से उपराम होना चाहता हूँ। वह मोक्ष मुझे कब प्राप्त होगा मैं इस संसार सागर को दृष्टिपात करना नहीं चाहता, मैं तो आपको इस संसार में ही दृष्टिपात करता रहता हूँ। हे प्रभु अब मेरी यह इच्छा बन गयी है कि मैं अब आपके समीप जाना चाहता हूँ। हे प्रभु मैंने ममता को त्याग दिया है और मेरा वह संकल्प समाप्त हो गया है। मेरा यह मुक्ति का संकल्प मानो महानता को प्राप्त हो गया है। हे प्रभु आप मुझे दृष्टिपात आते है रूद्र भी आप हैं। मानो चेतना में रत रहने वाले आप हैं, हे प्रभु आप महान चेतनित है। मुझे भी चेतना के क्षेत्र में ले जाइए। जहां मैं चेतना से जड़वत को प्राप्त हो गया था, अब मैं जड़वत नहीं रहना चाहता हूँ मैं चेतना में रत रहना चाहता हूँ, हे प्रभु आप में एक-एक परमाणु गमन कर रहा है एक-एक लोक लोकान्तर मानो आपके सूत्र में पिरोया हुआ है। हे प्रभु और जो लोकलोकान्तर की माला बनी हुई है हे प्रभु मुझे भी माला बनाकरके अपने में धारण कर लो। हे प्रभु मैं माला का एक मनका बनना चाहता हूँ जैसे आपने सूर्य को एक मनका बनाया है, एक मनका चन्द्रमा है एक वृहस्पति मनका है एक मानो अरूणि मराडल मनका है ऐसे ही एक धुरव मनका है और इसकी माला बन करके मानो ये मनके सूत्र रूपी आप में पिरोये हुए हैं आप ही तो इसके सूत्र बने हुए हैं ये तो केवल मनके है और सभी मनके ही आप में पिरोये हुए है तो उस माला को आप ही तो धारण कर रहे हैं। हे प्रभु मैं भी आपकी माला का एक मनका बनना चाहता हूँ।

मेरे प्यारे देखो महाराजा जडभरत इस प्रकार अपनी उपासना करते हुए देखो नेत्रों से अश्रुपात हो रहे हैं। वाणी मानो अपनी स्थलियों में वाणी नहीं रही, घ्राण इन्द्रिय अपने में सुगन्ध से वश्चित होने लगी, नेत्र दृष्टि से वश्चित होने लगे हैं। देखो हृदय में हृदय को समेटना चाहता हूं और यही अध्यात्मिक उपासना का मूल कहलाता है। जिसके ऊपर बेटा ऋषि मुनि परम्परागतों से अन्वेषण करते रहते हैं अनुसन्धान करते रहते है उस अनुसन्धान की वेला में यह ब्रहमाराड उनके लिए खिलवाड़ है और ये ज्ञान विज्ञान को त्यागकर अध्यात्मिक में अध्यात्मिक वेत्ता बनकरके अपने में रत हो रहे हैं। वह परमपिता परमात्मा अनन्तवान है और उनका ब्रहमाराड भी अनन्तवान में देखो सर्वत्र पिरोया हुआ है। और इस ब्रह्माराड को साधना करने वाला प्राण और अपान में रत हो करके, उसको अपने में दृष्टिपात कर लेता है।

जैसे ही उनका अनुष्ठान समाप्त हुआ, इसी अनुष्ठान की उपासना को और उसके पश्चात जो उनके उद्गार थे। उनको श्रवण करते हुए महाराजा नहुष उनके चरणों में ओत प्रोत हो गये और व चरणों की वन्दना करने

लगे। महात्मा भरत जी मौन है, राजा भी मौन है देखो प्रभु में प्रभु की उपासना करते हुए महाराजा नहुष और वे जडभरत दोनों एक दूसरे में प्रभु के उपासक बन गये। तो विचार यह कह रहा है ? कि मानव अध्यात्मिक बनने के लिए नाना प्रकार के अनुष्ठान करता रहता है और उसे अनुष्ठान करने चाहिए। अनुष्ठान उसके कहते है जो अपने में कटिबद्ध हो जाता है, जैसे वृष्टि होती है और वह उस वृष्टि में ही अपने को कटिबद्ध कर लेता है। इसी प्रकार जो मानव प्रभु की साधना में इतना रत हो जाता है कि अंग-अंग में मानो उसी को दृष्टिपात करता है। प्राणों में अपान में, व्यान में, उदान में वही रत रहने वाला है। उसके ये भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप उसे दृष्टिपात आते हैं और उन्ही को एकता में, अनेकता और एकता को अपने में धारण करता रहता है। वही बेटा व्यष्टि और समष्टि में प्रवेश कर जाता है व्यष्टि को समष्टि में ले जाना ही बेटा ब्रह्माण्ड है और समष्टि को वृष्टि में ले जाना ही संसार है। वही मोह है, वही देखो क्रोधाग्नि जागरूक होती रहती है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हे मानव तू संसार में मोह-ममता में इतना रत न हो। जिससे मोह-ममता मानो तेरे जन्म-जन्मातरों के संस्कारों का मूल बनता रहे। तू सदैव अपनी ममता में इतना रत न हो। हे मानव तू अपनी आत्मा से ही ममता को धारण कर आत्मा को ही आत्मतत्व में रमण करने वाला बन जिससे तेरा आत्म उद्धार हो जाय। तो यह वाक्य उच्चारण करने का आशय क्या है कि महात्मा जड भरत और नहुष की आत्म चर्चाएं होती रहती। आत्मा में वह सैदव लीन रहने का प्रयास करते रहते। वे अब पुनः से अपनी एक पहरी से दूसरी पहरी पर जाना उन्होंने आरम्भ कर दिया, जैसे ओ३म्, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम ये सात प्रतिभा कहलाती है और उन्हीं सात प्रहरियों के उपरान्त प्रभु अन्वन्ती दर्शन हो जाता है कि वह मोक्ष के निकट जाना प्रारम्भ कर देता है और अपने में ही अपने को वह रत हो जाता है। (13 अप्रैल 1991)

मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि मानो महात्मा जड भरत और उनके प्रियतम राजा महाराजा नहुष उनका नामोकरण उन्होंने किया। इस नामोकरण के पश्चात उनका नामोकरण मृचिका उन्होंने कर दिया, तो महर्षि मृचिका और महात्मा भरत वहां से गमन करते हैं। और भ्रमण करते हुए महर्षि वैशम्पायन का एक आश्रम निकट था उस आश्रम में दोनों ऋषि पहुँचे। तो महर्षि वैशम्पायन ने उनको आसन दिया और वे विराजमान हो गये। महर्षि वैशम्पायन ने आकृति, उनके नेत्रों से और उनके क्रियाकलापों से यह जान लिया कि यह तो पूर्व जन्म के साकल्य मुनि है, जो मोक्ष के निकट चले गये थे और यह पुनः विवेकी बन गये हैं, उन्होंने कहा हे ऋषिवर अब आप साधक बन गये हैं और पुनः से मोक्ष के निकट जाना चाहते हो। यह बड़ा हर्ष का विषय है। तो महात्मा जडभरत ने कहा कि मैं आत्मतत्व में अभी इतना नहीं पहुँच पाया हूँ। जितना में पूर्वकाल में गतिमान हो गया था। महर्षि वैशम्पायन बोले ऐसे में तो मानो अभी देरी लगेगी, परन्तु तुमने अपनी पगडण्डी को अपना लिया, इस पगडण्डी पर चलने वाला एक समय उस स्थान पर परिणित हो ही जाता है, अथवा अपनी स्थिर स्थितियों में रत हो जाता है।

मेरे प्यारे उन्होंने कहा, हम वहां जाना चाहते हैं जब शिकामकेतु उद्दालक के नाना प्रकार का अध्ययन होता रहता है। महर्षि वैशम्पायन बोले चलो भगवान। मैं भी आपके सहित गमन करना चाहता हूँ। देखो वहां से उन्होनें प्रस्थान किया और व भ्रमण करते हुए महर्षि अगस्त्य मुनि महाराज का आश्रम उन्हें कहीं प्राप्त हो गया। तो महात्मा अगस्त्य मुनि के द्वार पर पहुँचे। महात्मा अगस्त्य मुनि महाराज उस समय हृदय रूपी यज्ञशाला में लगे हुए थे। तब तीनों ऋषियों ने चरणों की वन्दना की और कहा, कहो भगवन! आप कहां परिणित (गमन) हो

रहे हैं ? उन्होंने कहा मैं हृदयरूपी यज्ञशाला में यज्ञ कर रहा है।

उन्होंने कहा हृदय रूपी यज्ञशाला किसे कहते हैं ? जहां प्रत्येक इन्द्रिय के साकल्य को एकत्रित किया जाता है, मानो जहां रसना से रसों का साकल्य और त्वचा से प्रीति का साकल्य और घ्राणेन्द्रिय से मंद सुगन्ध का साकल्य और स्रोतों से शब्द का साकल्य और नेत्रों से रूप का साकल्य मैं एकत्रित कर रहा हूँ। और जब मैंने एकत्रित कर लिया है, तो इसको साकल्य बनाकर हृदय रूपी यज्ञ में प्रवेश हो गया हूँ और मानो मैं याग कर रहा हूँ। क्योंकि हृदय रूपी यज्ञशाला में हृदय ही में तो सर्व साकल्य निहित होता है। जैसे एक मानव रूप को दृष्टिपात करता है क्योंकि नेत्रों का देवता अग्नि है और अग्नि का मौलिक गुण रूप है और इसकी स्थिति हृदय में हो जाती है। मानो शब्द और स्रोत जिससे वह शब्द श्रवण किया जाता है और उसका देवता दिशाएं कहलाती है परन्तु सब दिशाएं समाहित हो करके साकल्य बन करके मानो शब्द की स्थिति भी हृदय में निहीत हो जाती है। इसी प्रकार मेरे पुत्रों उन्होंने कहा ये जो नेत्र हैं उनका देवता अग्नि है और ये अग्नि के स्वरूप में रूप को दृष्टिपात करते हैं और स्थिति भी हृदय में हैं। अरे ये रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि सब में हृदय से ही तो मानव उदगीत गाता रहता है। आज मेरा हृदय प्रियता को प्राप्त नहीं हुआ। अन्न भी मुझे प्रिय नहीं लग रहा है ऐसा मानो मन कहता रहता है परन्तु मैंने इन पञ्चीकरण साकल्य को ले करके एकत्रित किया है उसका साकल्य बना करके उसके हृदय रूपी यज्ञशाला में मैं स्थापित करना चाहता हूँ। मानो यह प्रसंग ले करके मेरा हूत नहीं हो रहा है उसी हूत को ले करके आज उद्दालक गोत्र में प्रवेश होना चाहता हूँ। मेरे प्यारे वहां से गमन किया और महर्षि अगस्त्य मुनि महाराज ने उनके साथ ही प्रस्थान किया और कहा महाराज मैं भी इसे जानना चाहूँगा, तुम्हारी उत्कृष्ट इच्छा तो मिलन की है और मेरे हृदय में जो ग्रन्थि लगी हुई है उसका मैं स्पष्टीकरण चाहता हूँ। महात्मा भरत मग्न रहे। बेटा देखो महर्षि वैशम्पायन, महर्षि मृचिका, महात्मा जडभरत और अगस्त्य मुनि महाराज भी ने यहां गमन किया और भ्रमण करते हुए महर्षि उद्दालक गोत्र में पहुँचे। क्योंकि हमारे यहां उद्दालक गोत्र बड़ा विज्ञान वेत्ता मान गया है। जहां भौतिक विज्ञान और अध्यात्मिक विज्ञान दोनों को ही माना गया है। तो देखो जन वे सभी महर्षि उनके द्वार पर पहुँचे तो उनकी पतिनी रम्भेश्वरी ने और महर्षि शिकामकेतु उद्दालक ने चरणों की वन्दना की क्योंकि वे अतिथि थे और अतिथि होने के साथ ऋषि भी थे क्योंकि वह ब्रह्मवेत्ता ऋषि कहलाते थे। जो सदैव ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करते रहते थे। उनका कुछ कन्द मूल आदि से जब स्वागत किया गया। मानो उस समय वे बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्न चित्त होकर बोले कि हे ब्रह्मवेत्ताओं तुम्हारा आगमन कैसे हुआ है ? उन्होंने कहा हे प्रभु हम इसलिए आये हैं कि हे प्रभु मैं एक याग कर रहा हूँ और मैं हृदय रूपी यज्ञशाला के साकल्यों को जान गया है। परन्तु साकल्य जब हृदय में समाहित हो जाते हैं जब मैं उनका हूत कर लेता हूँ। तो उसकी क्या गति होती है, यह भगवान मैं नहीं जान पाया हूँ और इसीलिए आपके चरणों की वन्दना कर रहा हूँ कि मेरे हृदय में जो ग्रन्थि लग गयी है। इसका स्पष्टीकरण भी किया जाय। महात्मा अगस्त्य मुनि ने जब ऐसा कहा, तो महर्षि शिकामकेतु उद्दालक मुनि बोले भगवान! आप कितने समय से इनका साकल्य बना रहे ? उन्होंने कहा प्रभु मुझे बहुत समय हो गया है, और मैं साकल्यों को तो जान गया हूँ। जिनकी स्थिति हृदय में समाहित हो जाती है। वे हृदय का धर्म और मनोवृत्ति कहलाती है। तो हे प्रभु मैं यह और जानना चाहता हूँ कि इसकी क्या स्थिति हो जाती है ? महर्षि शिकामकेतु उद्दालक मुनि ने कहा हे प्रभु हे भगवन! हे ऋषिवर! हे ब्रह्म वब्रे जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ हृदय की उस स्थिति के पश्चात मानो हृदय विवेक में जब प्रवेश हो जाता हे तो हृदय का परमात्मा के हृदय से मिलान होता है। जिज्ञासु का हृदय एक ऋषि का हृदय

और परमात्मा के हृदय का दोनों का मिलान होता है। तो वह स्थिति है वह चेतना और प्रकाश की स्थिति है और वह राष्ट्र की स्थिति है क्योंकि परमात्मा का राष्ट्र सार्वभौम कहलाता है विश्वभान कहलाता है। तो अगस्त्य ऋषि ने कहा हम परमात्मा में स्थित हो जाये। महात्मा अगस्त्य मुनि महाराज का हृदय उनकी वार्ताओं से सन्तुष्ट हो गया। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु परमात्मा के हृदय का और मानव के हृदय का जहां समावेश हो जाता है वहीं उत्पत्ति का मूल बनता है, और वहीं यह जगत अपने में स्थित हो जाता है। तो ऐंसा बेटा ऋषि ने वर्णन किया अगस्त्य मुनि तो शान्त हो गये।

देखों अब महात्मा भरत ने एक प्रश्न किया कि महाराज ये जो ऋषि है, न ऋषि के हृदय में एक ग्रन्थि लग गई है और एक जिज्ञासा है। महात्मा शिकामकेतु उद्दालक ने कहा, हे भरत तुम्हारे हृदय में तो कोई ग्रन्थी नहीं है आप तो जन्म जन्मान्तरों में ग्रन्थियों का स्पष्टीकरण करते चले आये हो। तुम्हारे हृदय में कोई ग्रन्थी नहीं रही है। उन्होंने कहा नहीं प्रभु तो उन्होंने कहा तो तुम अपने में जिज्ञासा प्रकट क्यों कर रहे हो ? जिसको जिज्ञासा हो, वह मेरे से प्रश्न कर सकता है।

महात्मा जड़भरत तो अपनी आत्मा में लीन हो गये और वह आत्मा का चिन्तन करने लगे। परन्तु देखो मृचिका ऋषि ने यह प्रश्न किया, यह जिज्ञासा प्रकट की कि प्रभु। मैं इससे पूर्व काल में अपनी उपलब्धियों से अलंकृत हूँ। मेरी जो राष्ट्रीय उपलब्धि थी मेरा नामोकरण महाराजा नहुष है और उन्होंने मेरे ऋषि ने मेरे पूज्यपाद देव ने मेरे जीवन का परिवर्तन किया है। और उसी परिवर्तन के आधार पर मैं अपने वाक्य का उदगीत गा रहा हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम उच्चारण करो तो उन्होंने कहा प्रभु मैं इनके चरणां में विद्यमान हूँ। इन्होंने मुझसे एक प्रश्न किया था कि तुम्हारी नाभि क्या है, उन्होंने कहा प्रभु मैं नाभि को जानना चाहता हूँ। शिकामकेतु उद्दालक ने कहा, तुम कौन सी नाभि को जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि जिस नाभि से बालक को अमृत प्राप्त होता है मैं उस नाभि को जानना चाहता हूँ। उन्होंने कहा देखो जिस नाभि के तुम जानना चाहते हो, वह मध्य में रहती है और वह मध्याम भूः वर्णा ब्रह्मे कुतं मध्य में रहने वाली नाभि है, उस नाभि को जानने के लिए तुम आये हो और नाभि अमृत कहलाती है उससे अमृत प्राप्त होता है। सबसे प्रथम नाभि से मानव का जीवन है। माता के शरीर में एक नाभि है और नाभि के द्वारा शिशु को रसों का स्वादन होता है। बाल्य की नाभि से माता की नाभि का समन्वय रहता है। तो वहां अमृत प्राप्त होता है तो माता की नाभि और अपनी नाभि अपने में ही अपने रसों का स्वादन करते रहते हैं। और एक नाभि वह कहलाती है जो परमपिता परमात्मा के आंगनम्ब्रवेः ब्रह्माण्ड की नाभि कहलाती है जो पृथ्वी है यह ब्रह्माण्ड की नाभि है क्योंकि जब भी वैज्ञानिक जन अपने में गतिवान होते हैं परमात्मा के इस विज्ञान में रत होना चाहते हैं, तो उसी समय नाभ्याम् भविताम् ब्रह्मणे कृतम वे नाभि के ऊपर अन्वेषण करते हैं और विज्ञानवेत्ता आता है तो वह पृथ्वी को जाना है क्योंकि पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थ होने से ही वह नाभि बन करके यज्ञशाला कहलाती है। यज्ञ द्वारा ही नाना प्रकार की सुविधायां उत्पन्न होती है और वह सुगन्धि ही वायु मण्डल में उर्ध्वा में प्रवेश हेती है और उन तरंगों का पृथ्वी के गर्भ में नाभ्याम् ब्रहे नाना प्रकार की तरंगों का मिलान होता रहता है और वह नाभि कहलाती है जिससे मानव ज्ञान और विज्ञान वेत्ता बन जाता है और वह विज्ञान में रत होकर अपनी आभा में रत हो जाता है। वेद मंत्र कहता है 'नाभ्याम् ब्रहह्मणे देखो महर्षि शिकाम केतु उद्दालक ने कहा यह नाभि है और यज्ञ भी एक नाभि, और जिसकी नाभि अग्नि कहते है जो देवताओं की नाभि कहलाती है। जब यजमान यज्ञशाला की अग्नि में हूत करता है जब साकल्य को अग्नि में समर्पित करता है तो यह अग्नि बेटा देवताओं की

नाभि कहलाती है देवताओं का मुख कहलाता है। जैसे बाल्यकाल में नाभि द्वारा रसोस्वादन होता है इसी प्रकार बाह्म जगत में नाभि से जो अग्नि है वही देवताओं का मुख है देखो यजमान यज्ञशाला में हूत कर रहा है और हूत करके देवताओं को प्राप्त होता है, जब पृथ्वी को प्राप्त होता है तो यह पृथ्वी नाना व्यंजनों वाली बन जाती है नाना प्रकार के व्यंजनों में रत हो जाती है, और रत हो करके नाभि बन करके यह नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन करके देवता जागरूक हो जाते हैं और देवत्व को प्राप्त हो करके ब्रह्मणा कृतम् उसी नाभिक से हम ज्ञान-विज्ञान की उड़ाने उड़ने लगते हैं और परमात्मा के अमूल्य जगत को दृष्टिपात करने लगते हैं।

तो उस समय महाराजा नहुष (मृचिका ऋषि) की वह ग्रन्थी स्पष्ट हो गयी और उन्होंने कहा उसका समन्व्यय नाभि से हो जाता है। परमात्मा की नाभि से उसका अमूल्य समन्वय हो करके अपने में धारयामि बन जाता है। वह मानो विचारता रहता है कि तो वह नाभि अमृत वही परमात्मा परमदेव नाभि है। वह मानो चेतनाबद्ध है यज्ञमयी स्वरूप है तो यज्ञम् बह्मः याग ही संसार की नाभि कहलाता है, ब्रह्माण्ड की नाभि है। जहां से देखों चहुंमुखी तरंगे तरंगित हो करके और वायुमण्डल में प्रवेश हो करके घौ को प्राप्त हो जाती हे और मानव का चित्र मानव के शब्द और मानव का जो क्रिया कलाप है वह अग्नि की धाराओं पर देवत्व को प्राप्त होकर घौ में प्रवेश हो जाता है।

मेरे प्यारे देखो शिकामकेतु उद्दालक ने यह जब अपना निर्णय दिया, तो वह बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, कहो महात्मा जड भरत आप तो जड भरत हैं। आप तो जड़ की भांति रहते हैं संसार में। आप तो ब्रह्म-विद्या में लीन रहते हैं। हे प्रभु। आपको कोई जिज्ञासा नहीं होती है। मैं अपनी जिज्ञासा का समाधान कर लेता हूँ मुझे तो प्रभु मोह हो गया था, और मोह के कारण मैं कहां चला गया। मैं प्रवृत्तियों में रत हो गया। शिकामकेतु उद्दालक ने कहा तुम तो आत्मा में पुनः लीन हो जाओंगे, परमात्मा में तुम्हारी स्थिति हो जायेगी और तुम बहुत काल तक के लिए तुम कल्प कल्पान्तरों में रमण करते हुए परमात्मा के आनन्द में पुनः चले जाओगें। जब ऋषि ने यह वाक्य प्रकट किया तो महात्मा जड भरत की शंकाओं का निवारण हो गया। देखो हृदय में जो ग्रन्थी होती है, उसका स्पष्टीकरण बहुत अनिवार्य है। (14 अप्रैल 1990)

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।